सड़क पर

[सत्रह कहानियाँ]

श्रीपहाड़ी

प्रकाशगृह, इलाहाबाद

द्वितीय-संस्करण : १६४६

दो रुपया, आठ आना

मुद्रक :—महावीर प्रसाद, प्रेम-प्रेस, कटरा प्रयाग ।

सड़क-पर के पिछले संग्रह में नौ कहानियाँ थीं
अब इसमें सत्रह हैं। आशा है कि
पाठक इनको पसन्द करेंगे।

—प्रकाशक

श्रीठाकुरप्रसाद चतुर्वेदी और श्रीरामअहक तिवारी

को

विषय-सूची

विश्राम

गली के नुक्कड़ पर बूचड़ की दूकान ! बाहर जमीन पर पड़ी अंतड़ियों पर तीन लुन्डैरू कुत्ते जुटे हुये कभी-कभी अपनी जाति का सही स्वरूप सुझाते—भू-अ अ अ आपस में झगड़ उठते ! फिर खपरैलों से छाया कच्चे मकानों का पिछवाड़ा। पास पड़ी मेहतरानी की टोकरी पर मक्खियाँ भिनभिना रही थीं। उससे लगी नाली में मैला बह रहा है। जिसकी बदबू से एक भारी छी-छी पैदा हो रही थी। वह मेहतरानी—उसकी पायजामानुमा बंधी धोती, पुरुष जाति से छुपाने को आँचल से ढका मुँह ; अभी कुछ देर हुई, पीठ पर एक बड़ा टोकरा लाद कर चली गई। कुछ और आगे चूने से पुती दीवालों का अतिमञ्जिला मकान है। वहीं गहरे हरे रङ्ग से पुते दरवाजे पर एक बङ्गाली युवती अपने छोटे भइया से गपड़-सपड़ बातें कर रही है। उसका मुँह मोटा, उस पर चेचक के बड़े-बड़े दाग और गोद में बच्चा लिये हुए है। वह दो-ढाई साल का बच्चा बार-बार चेष्टा कर रहा था कि माँ के स्तनों पर अधिकार पा, दूध पीना शुरू कर दे। वह युवती इसके प्रति हठ ठाने थी। बच्चा इसीलिए कभी मचलता, तो फिर बनावटी रोना रोने लगता था।

उस मोहल्ले के अपने वातावरण में, उस गली का अपना एक व्यक्तित्व है। वह कभी बायें ओर मुड़ती, कभी दायें, तो कभी सीधी आगे-आगे खपरैलों से छाए कच्चे मकानों के बीच मैले-कुचैले इन्सानों के अस्तित्व की रक्षा करती हुई मिलती। जहाँ बहुत लोग विश्राम करते पड़े रहते। जो म्युनिसिपैलिटी ने पानी का बम्बा बीच में लगा कर अपना अहसान वहाँ स्थापित कर दिया है। उसका अपना ही दैनिक जीवन है। वह एक यथार्थ-पूर्ण वातावरण से घिरा हुआ

रहता है, जो लोगों की दृष्टि में सर्वथा कुरूपता की तरह खटकेगा। कभी वहाँ कोई काली-कलूटी अधेड़ युवती नहाती है। वह अधेड़ है, उसकी ढली जवानी वहाँ व्यक्त हो जाती है। अर्द्धनग्न सी वह असावधानी से नहायेगी। नारित्व के जबर्दस्त हथियार लज्जा की खास परवा उसे नहीं है। वह बम्बा एक सीमित परिवारवालों को आश्रय देने का साधन है और वहाँ के दैनिक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। छोटे-छोटे बच्चे उसके पानी से खेलते हैं, या फिर सन्ध्या को भिश्ती अपना मश्क भर कर पास वाली सड़कों को सींचने का व्यापार चालू करता है। कुछ दूर हट कर ग्वालों की जो बस्ती है, वहाँ से यदा-कदा वे लोग अपने भैंसों को यहाँ नहलाने ले आते हैं। उन भैंसों के काले बदन से टपकती पानी की बूँदें कभी आस-पास बैठे खोञ्चेवाले तक पहुँच जाती हैं। वे नाक-भौं सिकोड़, उसके मालिक की ओर तिरछी पैनी नजर से घूरते हैं; कहेंगे कुछ भी नहीं। कारण की ग्वाले के कान पर सोने की मुरकियाँ हैं। वहाँ के छोटे समाज के बीच वे घोसी लोग ही साधारण सूद पर सेठोंवाली हैसियत से रुपया फैलाया करते हैं। तो वह बम्बा उस गली में एक महत्त्वपूर्ण जगह स्थापित किए हुए हैं। वहीं पर बड़ी सुबह आस-पास रहनेवाले साधारण गृहस्थों की नारियाँ पानी भरतीं, गप-सप लगाती अपनी नारी जाति का पूर्ण परिचय देती हुई मिलेंगी। या वहाँ के जीवन में प्रति दिवस होने वाली किसी भेद-भरी बात का रहस्य खुलेगा। वह सब बातें पुरुष-समुदाय के बीच पहुँचकर यदा-कदा भारी हल्ला फैला देती हैं।

गली के बाहर नगर का अपना जीवन है। वहाँ रहता है मुरली। उसने दूर तक नागरिक जीवन की चमक देखी है। बड़ी-बड़ी 'ऐण्ड कम्पनी' की दूकानों की सजावट का अनुभव उसे है। इसलिए गली के भीतर आते ही वह अप्रतिभ हो उठता है। चौकन्ना होकर चलता है, संभल-संभल कर कि जैसे सब लोग उसे घूर रहे हों और वहाँ वह

अपराधी की तरह जाता हो। नहीं, वह तो है मजबूर। वहाँ उस गली के भीतर एक मध्य श्रेणी वाला परिवार रहता है। वहीं उसके एक घनिष्ट मित्र अपनी पत्नी के साथ टिके हुए हैं। उनकी जो पत्नी है, उसे वह भाभी कहता है। वह भाभी तो साधारण परिचय के बाद बोली थी, "ओ, आज देखा आपको। वे बात-बात पर रोज ही आपका जिक्र करते थे।"

"ऐसी बात थी, तो……!" मुरली सहारा पाकर बोला।

कि बात कट गई "पहले घर-बार जोड़ लो, तब मेहमानों की सोचना।"

नारी के इस सावधान करने वाले कर्तव्य के प्रति मुरली और क्या कहता। वह चुप रहा। वह चतुर भाभी सारी बात समझ कर उसे सुलझाते हुए बोली, "वे लोग थे, यहीं टिक गए। लाचारी थी। कुछ ही दिन तो रहना है। यहाँ हमारा आना-जाना लगा ही रहता है।"

आने-जाने की गति………! मुरली सब कुछ जानता है। यह नारी का झूठ घमंड है। उसके चारों ओर समाज है। वहाँ, जहाँ कि कुछ व्यक्तियों ने कानून से उसे जकड़ दिया है। वह नारी कई युगों से बन्धन स्वीकार करती चली आई है। भूली-सी कहती है कि वह स्वतन्त्र है। यह सब उसका दिखलावा है। वह इस उदारता को बरतने में प्रवीण है। जो उसके हृदय का विद्रोह है, उसमें चुपचाप आजीवन सुलगती रहेगी। वह मूक है। अन्याय के परिधान के भीतर संकुचित रहना जान गई है, अन्यथा यह कैसा भेद है?

"पान खा लो।" बोली थी भाभी।

मुरली ने पान ले लिया। मुँह में ठोंस, चुपचाप चबाने लगा। कुछ चिन्तित था। सोचता, सम्भव और सत्य की व्याख्या का निर्णय क्या होगा?

"चाय पीने होंगे। यहाँ तो खुद हमीं मेहमान हैं।" अपनी असमर्थता भाभी ने जाहिर की। मुरली ने भाभी के चेहरे पर इस विवशता का पूर्ण रूप फैला हुआ देखा।

मुरली में सामर्थ्य होती, कह देता—चल उठ भाभी। यह सब बखेड़ा मुझे नहीं सुहाता। मेरा अपना घर है। वहाँ नौकर सब काम संभाल लेता है। तुम दोनों भी चलो। पर वह बोला नहीं। कैसे बोले? जबान पर ताला जो लगा था। वह चुप रहा; पत्थर की मूर्ति की तरह गूँगा। वह कुछ कह सकता, ठीक था। अब उसने सारा बल बटोर लिया। सोच कर कि वह कहेगा। यह आमन्त्रण नहीं है। अपनत्व के दायरे के बाहर, उनका इस तरह मेहमान की हैसियत से पड़ा रहना ठीक बात नहीं। सब अनुचित है। इस भीतरी तर्क को बल बना, वह अब बोलेगा—बोलेगा, कि तभी वह भाभी उठ गई। बोली किसी से, "तू लौट आई शीला। हमें तो दिखा, क्या खरीद लाई है?"

मुरली ने शीला की ओर देख लिया! उस शीला के दोनों हाथ उठ गए। मुरली को नमस्ते किया। भाभी उन चीजों की छान-बीन करने लगी। मुरली चुपचाप शीला और भाभी को तोलने लगा।

शीला को आज उसने पहले-पहल देखा है। उसकी बातें सुन चुका है। उसके एक अन्तरङ्ग मित्र हैं, उनसे वह प्रेम करती है। इसका एक सुन्दर फोटो उनके पास है, जो वास्तव में शीला से अधिक सुन्दर उभर आया है। इस शीला की लिखी चिट्ठियाँ उसने पढ़ी हैं। यह शीला अभी केवल एक कुमारी है, जब कि उसके दोस्त हैं गृहस्थ! शीला इस बात के प्रति उदासीन नहीं। अपने प्रेम के उफान के आगे वह अपने 'नारीत्व' का परवा नहीं करती है। अपने को समर्पित कर चुकी है। उसके लिये अधिक चौकसी नहीं। जब खत लिखती है, उसकी भीतरी-आग से अपनी नारी-कोमलता भस्म करने में नहीं चूकती। वह उस पुरुष के जीवन में प्रवेश कर अपने स्थाई

रूप को विसार चुकी है। इसके लिए उसने किसी की आज्ञा नहीं ली। स्वयं अपने विचारों में बह गई। पिछली धारणाओं के प्रति अविश्वास बना लिया। मुरली शीला को देख कर ठीक-ठीक पहचान नहीं सकता है। भाभी साड़ियाँ और जम्पर के कपड़े देख रही थी। शीला सारी बातें एक पक्की नारी की तरह बता रही थी। वह बहुत सरल और बचपन की तरह भोली लगी। वह शीला के चरित्र की व्याख्या, एक पुरुष की हैसियत से कर रहा था।

भाभी बोल बैठी, "हमारी शीला बहुत सुन्दर गाती है।"

वह शीला गाती है। मुरली भली-भाँति जानता है। अब क्या उत्तर दे कि शीला ने उबार लिया। सारी चीजें नौकरानी को सौंप कर भीतर चली गई। मुरली अपने मन के भीतर कुछ कुरेदता रह गया। असमञ्जस में सा वह एकाएक उठ बैठा। कहा, "अब तो आप यहीं हैं। फिर आऊँगा।"

"कल जरूर आइयेगा। हमें सिनेमा जाना है।"

"लेकिन कल मेरा एक काम है।" झूठ न जाने क्यों मुरली बोल बैठा। वह खुद अपनी यह बात नहीं समझ सका। सम्भवतः शीला के प्रति वाले विश्वास में, वह अपने को अपराधी स्वीकार करना नहीं चाहता था।

भाभी ने वह बात कठोर सत्य की तरह स्वीकार करते हुये कहा, "शीला के साथ चली जाऊँगी।"

शीला के साथ भाभी सिनेमा जायेगी। उस शीला पर वह टिक जाता है। वह शीला सुन्दर गाती है। किसी से गाढ़ा प्रेम भी उसका है। बस, वह उस पर कोई राय नहीं देगा। भाभी है, शीला है और उसके बाद दुनियाँ बहुत फैली हुई है। जहाँ वह सर्वदा छानबीन करता रहेगा। लेकिन नूतन और नवीन व्यवहार अभी-अभी उसने भाभी से पाया है। वह किस अधिकार से शीला को बरबस बीच में खींच, उसकी व्याख्या करने को तुल जाता है।

वह तो गली के भीतर है, जहाँ का जीवन उसे अटपटा-सा लग रहा है। वह वहाँ ठहर-ठहर कर चल रहा है। हरएक बात को समझने का जैसे कि अवसर पाना चाहता हो। गली का विस्तार काफी बड़ा है। वहाँ साधारण श्रेणी के गरीब लोग अधिक रहते हैं। जहाँ सूर्य की रोशनी पूरी नहीं पहुँचती है। रात्रि को इधर-उधर मटमैले चिराग टिमटिमाया करते हैं। वहीं उसकी भाभी कुछ दिनों के लिये टिकी है। वह उसे ठीक तरह जानता नहीं, पहचानता नहीं! भाभी तो साधारण परिचय पर भयभीत नहीं हुई। उसमें हिचक न थी। जैसे की वह मुरली को बहुत पहले से पहचानती हो। वह मुरली न जाने आज तक क्यों इतनी दूर था। अब जैसे कि भाभी एक विश्वास की प्रतीक है जिसकी आधार-शिला बार-बार शीला स्थापित करना चाहती है! यह शीला……। वह उसका दोस्त चरित्रहीन और आवारा है। शीला उससे प्रेम करती है। प्रेम, जिसका अर्थ देना है। वह उस गृहस्थ-पुरुष से बदले में क्या पायेगी? तो क्या शीला अनजान है? क्या वह निकट भविष्य पर नहीं सोचती है। या बावली है, पगली है और नहीं जानती कि यह समाज क्या है? कल वह कहीं चटक गई, तब क्या होगा?

फिर वह गली, गली और गली! वह भाभी के पास से लौट रहा है। सामने ही तरकारी वाली बुढ़िया अपनी दूकान पर बैठी है। कितनी बूढ़ी है—सफेद रेशे जैसे बाल, मुँह पर झुरियाँ। आगे प्याज, बैंगन, आलू, परबल, टिमाटर, लौकी और तरह-तरह की मौसमी तरकारियाँ, अलग-अलग टोकरियों पर धरी हुई हैं। वह बड़े रूखे भाव से सौदा बेचती, निरुत्साह से पैसे एक डलिया में डाल देती है। न किसी से तकरार करती है और न मोल-तोल की चेष्टा। खरीददार के प्रति खास लोभ उसे नहीं है। इसके विपरीत उसके ऊपर जो छज्जा है, वहाँ कोई मनचली औरत रहती है। हरी धोती पहने सामने खड़े एक युवक से इशारे में बातें कर रही है। जैसे उस बूढ़ी के मौत वाली

उदासी लिए वातावरण की आकांक्षा में नया जीवन उड़ेलने की निरर्थक चेष्टा कर रही हो। एकाएक तभी उस औरत ने सावधानी से चारों ओर देखा। चुपचाप जीने पर उतरी और कुन्डी खोलदी। झट उस अँधियारे में वह युवक भीतर दुबक गया। तो जीवन प्रति-कूल-अनुकूल का झगड़ा है, जहाँ व्यक्ति की भावुकता ही उसका सही प्रदर्शन है। बाकी सब साधारण दिखलावा और कृत्रिम है, जिससे हरएक आनाकानी करके भी सचेष्ट नहीं रहता।

गली जितनी लम्बी है, उसकी दुनिया उतनी ही फैली हुई है। वह किसी एक इकाई में सीमित नहीं। वहाँ दहाइयों की बहुत बड़ी भीड़ लगी रहती है। जहाँ पग-पग पर घटनाओं का असाधारण रूप फैला हुआ मिल जाता है। वह रहस्यमय हो नहीं, गाढ़ी समस्याओं से परिपूरित भी है। कुछ विभिन्न आकारों का जञ्जाल है। वह जो म्युनिसिपैलिटी ने लकड़ी के खम्भे पर लैम्प लगा रखा है, उसकी बत्ती धप-धप-धप कर रही है। वहीं उसके पास दूध, मलाई, पेड़े आदि की दूकान है। वह हलवाई एक कुलहड़ पर अपने करछुले से दूध औटा रहा है। एक गाहक को देख कर, पूछ बैठता है, "मलाई कल नहीं ले गये।"

वह गाहक बड़ी शान से रुक पड़ा। यह उसका कैसा आदर था? झूठ बोला, अवहेलना के स्वर में, "भूल गए। अच्छा, आज कुछ अच्छी मलाई है।"

मिट्टी की कुलिया में मलाई तोलदी गई। वह गाहक चुपचाप छः पैसे देकर चला गया।

सब कुछ मुरली देख रहा है। बीच-बीच में सोचता जाता है कि एक उसकी भाभी है। शीला को वह आज देख ही चुका है। तब क्यों मन उदास होता जा रहा है। दिल पीड़ित है, जैसे कि वहाँ कोई चोट पिघल कर दुःख रही हो। उसका दिल क्यों उमड़ पड़ा

है। भारी कुहरा जैसे कि वहाँ फैल गया है। और गली के भीतर सारा फैला दुःख उसने वहीं भर लिया हो। वह अपने में गुनगुनाता है, शीला है, भाभी है। वह फिर अपना सही कर्तव्य वहाँ नहीं पाता है। जैसे कि कुछ खो गया है। जो भाभी और शीला से भिन्न है।

वह छान-बीन करता है। धुँधली पिछली किसी पहचान पर पड़ी गर्द झाड़ता है। वह याद बहुत मैली लगती है। उसको कई सालों के भारी-भारी महीने पूरी तरह ढक चुके हैं; तो भी उभर आता है सब कुछ। भावुकता की जो सतह है, उस पर वह मैली तसवीर अब उजली हो तैरने लगती है।

वह उसके पड़ोस की लड़की थी मन्नू। उसकी पूरी-पूरी जानकारी उसे थी। बचपन से उसने उस लड़की की गति समीप से भाँपी थी। वही एक दिन ससुराल चली गई, तो उसे जीवन कुछ सूना-सूना-सा लगा। लेकिन एक धुँधली सन्ध्या को वह अपने रेत के घर के उजड़ जाने पर मायके लौट आई। पति मर गया, वह अब विधवा थी।

तब शीला, भाभी और मन्नू! जैसे कि गली के अपार दायरे में वे तीनों नारियाँ ही सीमित अब उसके मन में थीं। और वह खुद पूर्ण हो। वह मन्नू बहुत चञ्चल थी। उसकी भारी उमङ्ग और उत्साह समाज ने कुचल दी। वह कोमल लड़की बिलकुल बदल गई थी। अब मुरली ने उसमें हँसी की छितरी रेखा-छवि कभी नहीं पाई। उस मन्नू से फिर भी वह अलग नहीं था।

होली की एक सुबह मुरली अनमना-अनमना-सा अपनी छत पर टहल रहा था। कोई बात मन में उदासी लिए थी। वह फिर टहलता का टहलता ही रहा। सोचता कि ठीक दो साल पहले मन्नू ने चुपके उसे रङ्ग से भिगो दिया था और अछूती भाग गई थी वह। फिर कब उसकी पकड़ में आई थी! तब उसी दिन उसने प्रतिज्ञा की कि

उस मन्नू को वह कभी जरूर छकायेगा। लेकिन मन्नू शादी के बाद ससुराल चली गई। जब लौटकर आई, उसकी वह सारी जीवन-सरलता, पीड़ा में बदल चुकी थी। जिस लड़की की पूरी जानकारी उसे बचपन से थी, वही अब अज्ञेय और दुरूह लगी। वह बार-बार चेष्टा कर, फिर से मन्नू को समझ लेना चाहता है कि क्या वह वही नारीरूप है, जिसे बचपन में वह मन्नू कह कर पुकारा करता था। पति के घर से पहले एक बार मन्नू चार दिनों के लिये मायके आई थी। तब मुरली उसे चिढ़ाने को श्रीमती मनोरमा देवी कहता था। वह चुपचाप सुनती थी। जिस लज्जा को वह पति-गृह से बटोर कर लाई, उसकी स्पष्ट छाप मुरली ने उसमें पाई थी। मुन्ना गौने के बाद ससुराल चली गई। जब लौट कर आई उसका जीवन फन्दा बन चुका था।

वह गली है और मुरली उसे पार कर रहा है। वहीं अनायास मन्नू की याद आ गई। गली का अपना विस्तार है, जहाँ मूँगफली-वाला दो पैसे पाव मूँगफली बेच रहा है। या फिर गोसियों के घरों के आस पास उपले फैले हुए हैं। भैंसे और गाएँ बँधी हैं। कीड़े-मकोड़े मवेशियों को परेशान न करें, इसीलिए कूड़ा-कर्कट जमा कर सुलगा दिया गया है। धुआँ ऊपर उठ-उठ कर समूची गली ही नहीं, आस-पास के मकानों के भीतर स्वयं ही प्रवेश पा चुका है। लेकिन छोटा चूल्हा जला, गली में ही बैठा पकौड़ीवाला गरम-गरम तेल की पकौड़ियाँ बना रहा है। कुछ चट्टुए उसके पास खड़े हुए खाने में मशगूल हैं। गली का समूचा वातावरण भद्दा सा लग रहा है। बहुत मैला-कुचैला। नागिन की तरह गली की टेढ़ी-मेढ़ी बनावट, अब रात को लगता है डस लेगी। उसी तरह, जैसे कि आर्थिक दासता का नग्न रूप गली के भीतरी अस्वस्थ गृहस्थों की मौत का इन्तजार कर रहा हो। यदि चुपचाप मौत उस गली के भीतर चली आए, बड़ा उपकार होगा। इसे रोजाना व्यापार मानना सही बात

है। तब उन छोटे-छोटे गृहस्थों के चारों ओर एक सीमा है। एक सीमित जीवन है। उनके आपसी सामाजिक सम्बन्ध भी हैं। सबके आदान-प्रदान का सही साधन वह गली है। वह उन परिवारों और शहर के व्यक्तित्व के बीच एक माफ़त की हैसियत है, जहाँ कि अलग-अलग मोहल्ले हैं और वहाँ गलियों का घना जाल है।

शीला सुन्दर गाती है। लेकिन कोई खास सौन्दर्य शीला में नहीं। वह शीला न मालूम क्यों उसके मन को नहीं भाता है। उसको लगा, जैसे कि शीला अपनी नहीं है। न शीला एक 'किरकरी' ही है। शीला की चिट्ठियाँ उसने पढ़ी हैं। वह बाहर जितनी कुरूप है, उसका भीतरी हृदय उतना ही सुन्दर है। वह इसीलिए उसके चरित्र की निर्बलता की परवा नहीं करता। वह भाभी जो अभी नई-नई मुरली ने पाई है, वह सगी लगी। तो क्या अब वह किसी और का सगा बनने का भूखा है। किसे-किसे अपना गिनता फिरे। सब झूठ का व्यवहार है।

बार-बार मन्नू हृदय में उभर आती है। वह बहुत कच्ची लड़की थी। उसी से मुरली ने सोचा था, वह रङ्ग खेलेगा। अपनी शर्त पूरी करेगा। उसके उस फूटे भाग्य की परवा उसने नहीं की थी। यह निर्णय जब वह कर चुका, तब भला कोई तर्क कैसे उठता। बस, उसने सारी तैयारी कर ली। सब—सब तरह पूर्ण था वह। अबीर-गुलाल से भरी तश्तरी, रङ्ग की बोतलें, पान का बीड़ा, मिठाई, नमकीन और मन्नू के भीग जाने पर बदलने के लिए साड़ी, ब्लाउज। अपने इस विश्वास पर वह बेहद खुश था। जैसे यही वह चाहता था। यह उसकी भारी जीत होगी। यह सारी तैयारी कर, उसने अपने छोटे भाई को मन्नू को बुलाने भेजा। कुछ देर बाद मन्नू आई। सफ़ेद धुली साड़ी और रङ्गीन जम्पर पहने हुए थी। आते ही बोली, "आपने मुझे बुलाया है।"

आपने ! उस अपरिचित शब्द को अवहेलना कर वह बोला, "तुम चली आई, ठीक किया। नहीं झगड़ा हो जाता। अब जब आई हो, तो सुनो। एक दिन भाग गई थी न। आज अब न भाग सकोगी। दो साल बाद, इसी पहर......।"

अवाक मन्नू खड़ी रह गई—उसी तरह स्थिर, अचल। यह सब मुरली क्या कह रहा है। वह कुछ समझ न सकी। वह क्या नहीं जानता कि आज मन्नू अब ! उसका मन उमड़ा; अपने भीतर वह रो उठी। सारा चुका हुआ बल जमाकर बोली, "जा रही हूँ मैं।"

"जा रही है। कहाँ ? क्या तुझे मालूम नहीं, आज होली है मन्नू। तू चुपचाप चली जायेगी। सुबह से अब तक की मेरी सारी मेहनत फिर बेकार गई। तुझे इस तरह चले जाने को मैंने नहीं बुलाया था। मै तुझ पर रङ्ग डालूँगा।"

"मुझ पर ?"

"हाँ, और अबीर से तेरा मुँह खिल उठेगा। रङ्ग के छींटों से...।"

"मन्नू बात काटती बोली, 'मैं नहीं खेलूँगी।"

"नहीं खेलेगी ?"

"नहीं-नहीं।"

"सच, नहीं खेलेगी ?"

"नहीं-नहीं।"

"झूठ तू बोल रही है। यह तेरी बहुत पुरानी आदत है। खेलनी पड़ेगी ! खेलनी पड़ेगी !!"

"मैं नहीं खेलूँगी।"

"तो, तू जा सकती है। मैं अपने किसी अधिकार से अब रोकना नहीं चाहता हूँ। तू जा, चली जा।"

'अच्छा।' कह कर सच ही मुन्नू दरवाजे की चौखट तक पहुँची थी कि मुसकराते हुए मुरली बोला, 'श्रीमती मनोरमा देवीजी, सुनो तो।'

यह व्यङ्ग मन्नू न सह सकी। लौट आई और तनकर मुरली के आगे खड़ी हुई। बोली फिर, 'लो, मलो अबीर, जितना चाहो रङ्ग डाल लो।'

देखा था मुरली ने मन्नू की आँखों से झर-झर आँसू बह रहे थे; जब मुरली चुप रहा तो गद्‌गद् हो वह बोली, 'चुपचाप खड़े क्यों हो। रङ्ग फेंको न। यही अब तुम्हारा कर्तव्य बाकी है। लो मैं खड़ी हूँ।'

उलझन में मुरली बोल उठा, 'तुम अब जाओ।'

मन्नू सच ही चली गई। मुरली अचरज में खड़ा का खड़ा ही रह गया। बात उसकी समझ में नहीं आई। अगले दिन सुना, मन्नू अपनी ससुराल चली गयी है। आगे वह उससे कभी नहीं मिला। मन्नू की बात को मन के घोंसले में सँवार, मारा-मारा डोलता रहा। नौ साल बीत गए।

आज वह शीला को समीप से देख रहा है। मन्नू ने उसे चिट्ठियाँ लिखी थीं। मुरली ने उनका जवाब नहीं दिया। तब वह अधिक अहसान की भूख नहीं थी। उसने चिट्ठियाँ लिखनी बन्द करदीं। आज मुरली चाहे, चिट्ठियों का सिलसिला जारी कर दे। वह नहीं चाहता है।

वह जो गली है, जहाँ अभी-अभी मूँगफलीवाला अपनी आखिरी आवाज देकर चला गया, मुरली उसे पार कर चुका है। गली के बाद वाले तिराहे पर वह खड़ा है। देख रहा है कि उस गली से जो नालियाँ सड़क की ओर बह रही हैं, वे बहुत मैली हैं। वह सड़क तो चौड़ी है, साफ भी। उस गली के भीतर अब नजर नहीं पैठती है। वहाँ धुआँ भरा है। सब बिलकुल धुँधला शून्य-सा लगता है।

मुरली सड़क पर तेजी से चलने लगा। वह मुड़ कर उस गली की ओर नहीं देखना चाहता है। वहाँ जो सनातन गन्दगी है, उसका वह आदी नहीं। लेकिन वहाँ उसकी भाभी, शीला, बङ्गाली लड़की, हरी साड़ीवाली—सब, सब रहती हैं।

वह मन्नू मखौल उड़ाती-सी लगी—गली जिस तरह आर्थिक दासता के विश्राम का प्रतीक है, उसी तरह वह समाजिक दासता...।

मुरली तेजी से घर की ओर बढ़ रहा था।

अब मुरली ने सोचा, नारी गली की तरह ही उलझी हुई है। वह अपनी भाभी पर ठहर रहा है, जो गली के भीतर किसी परिवार में विश्राम ले रही है। वहाँ शीला भी है। वह सुन्दर गीत गाती है। यह उसके मन का कैसा आश्रय है। संभव सत्य की तरह वह मन्नू को नारी कसौटी बना, हरएक को उस पर क्यों परखना चाहता है। यह उसका कैसा अधिकार होगा। मन्नू ने उसे चिट्ठियाँ लिखी थीं। वह बार-बार माफी माँगती थी। लिखती थी—वह असहाय और अबला है। उसका मन ठीक नहीं रहता है। वह बड़ी अभागिन नारी है। उसको क्षमा चाहिए। वह सबल बनना जान गई है। वह बल मुरली ने उसे सौंपा है। इसके लिए वह उसकी कृतज्ञ है।

शीला वाली चिट्ठियों की भाषा से वह जानकार है। वह अभी केवल प्रेम को देना-देना चिल्लाती है। लिखा करती है—नारी ने कभी पुरुष-स्वार्थ की परवा नहीं की। अपना सर्वस्व उसने उत्सर्ग कर दिया। पुरुष की उच्छृङ्खलता का ज्ञान उसे पूरा-पूरा है। पुरुष नारी को ठुकरा सकता है। नारी अपने कर्तव्य से विमुख नहीं होती है।

शीला सुघरी भाषा में अपने को व्यक्त करना जानती है। मन्नू पहेली-सी रचा करती है। दोनों बड़ी दूर और अलग हैं।

—:०:—

लाक्षणिक पुरुष

तो वह पुरुष था। आदम ने जिस जाति के पिता होने का गौरव पाया, वह उसी मानव जाति का पुत्र था। अपनी माँ से उसे एक झुँझलाहट मिली थी। जिसके कारण वह कभी किसी को प्यार न कर सका। उसकी माँ ने बचपन में बार-बार चाहा कि वह उसे प्यार कर ले। लेकिन बच्चे की आँखें एक खूनी की तरह तेज मिलती थीं। वह घबड़ा उठती थी। सब लोगों का एक ही मत था कि पति के प्रति एकत्रित की हुई उपेक्षा को वह अपने बच्चे पर बरत रही है। इसकी सत्यता किसी कसौटी पर नहीं परखी जा सकी, केवल अनुमान पर ही बात फैल गई। उसे भी वह मालूम हुई। वह अधिक सावधान न हुई। उसका जीवन में एकाकी रुख था। वह अपनी गृहस्थी में पति और पुत्र को कभी समीप नहीं गिन सकी थी। उसका नारी-विद्रोह अक्सर उस गृहस्थी के कच्चे निर्माण को मिटा देता था।

उसका पिता एक नामी डाकुओं के गिरोह का सरदार था। आस-पास सैकड़ों मीलों तक उसकी धाक और अपनी एक हैसियत थी। डाका डालने पर गाँव में किसी अनजान गृहस्थी की लड़की उसके हाथ लग गई। वह लूट-पाट के माल के साथ उस लुभावनी छोकरी को भी साथ ले आया। उसके प्रति मन में लोभ उठा। पहले भले ही उसे गृहस्थी का ख्याल नहीं था। अब अनायास एक तूफान उठा। जिस तरह कभी आदमी अपने से कई सवाल पूछ कर कैफियत माँगता है, उसी इन्सान की तरह सरदार नारी-भावुकता में बह गया।

उन डाकुओं का जीवन ! रोज-ही युद्ध में लगी हुई दिलेर जाति बुराइयों से अछूत नहीं है। जीवन-धारणाओं के भीतर, सामाजिक चरित्र की ओर वे उदासीन रहा करते हैं। अपने आन्तरिक सुख के लिये वे शराब पीते हैं, जुआ खेलते हैं और नारियों को साधारण शारीरिक खिलवाड़ का हथियार गिन लेते। वे व्यर्थ चरित्र को ऊपर उठा कर, समाज को धोखा नहीं देना चाहते। सरदार इससे बरी नहीं था। युद्ध होता, गाँव जीत लिया जाता। सब झोंपड़े जला दिए जाते। कसूरवार आदमियों की हत्या कर दी जाती थी। युवतियाँ आनन्द मानने के लिए बुलाई जातीं। उनका शरीर और सौन्दर्य कुचल कर सब एक क्रूर वीभत्स हँसी हँसते थे। नारी-कोमलता एक शारीरिक क्षणिक सुख के सिवाय कुछ और नहीं है, इसकी सबको पूरी-पूरी जानकारी थी। सरदार का आतङ्क दूर-दूर तक फैला हुआ था।

लूट की सारी सामग्री बटोर कर वे अपने गाँव लौट आते थे। एक जलसा होता। बकरियाँ मारी जातीं, शराब के दौर चलते। उनकी प्रियसियाँ उनका साथ देतीं। अपनी-अपनी दास्तान हरएक खीसें निकाल-निकाल कर सुनाता था। सरदार ने नारियाँ देखी थीं। उनका रूप पहचाना था। नारियों को हर पहलू से पहचान लेने की कोशिश की थी। लेकिन नारियों की बड़ी भारी भीड़ में से किसी से खास परिचय उसका नहीं था। पशुबल से नारी को अपनाना उसका काम था। उसके दिल में कभी कोई सवाल नहीं उठा। नारी कोई अचरज पैदा करने वाली वस्तु तो थी नहीं!

उस दिन उन लोगों ने एक गाँव लूटा था और जब सरदार अपनी मनचाही लड़की को अपमाने पहुँचा तो ठिठक गया। उस लड़की की आँखों वाली कातरता ने उसके हृदय को साधारण पुरुष की भाँति पिघला दिया था। उसने पहले तो समझा कि सब झूठ है। वह लड़की एक बहाना बना कर खड़ी है। फिर उसने शराब

पी—खूब पी ; अपनी आँखों से खूब घूर कर देखा—वह लड़की भयभीत न हुई थी। वह उससे डरी नहीं। दरवाजे के पास चुपचाप खड़ी थी। उसका पिता फर्श पर मरा हुआ पड़ा था। वह हत्यारा उससे अब क्या चाहता है, वह न समझ सकी। वह इन्तजार में थी कि वह चला जाय, तो वह पिता की लाश के पास रोवे। उसका सारा दुःख उमड़ रहा था। बड़ी देर से वह आसरा देख रही थी। अपनी चूकी सामर्थ्य बटोर कर खड़ी की खड़ी ही थी। सरदार ने घूर कर उस लड़की को देखा। कुछ नहीं बोला। उसे अभी होश था ही। एकाएक वह बाहर आया। दल के सब आदमियों को इकट्ठा किया। गरज कर बोला, "तुम सब कायर हो। मैं तुम्हारा सरदार अब नहीं रहना चाहता हूँ। मैं गृहस्थ बनूँगा। सरदार के ऊपर यह कानून लागू न होगा कि वह आजीवन कुँवारा ही रहे। तुम सब उसे धोखा देना चाहते हो। यह बात मुझे मान्य नहीं है।"

'सरदार!" दल का एक सदस्य उठ कर बोला।

सरदार ने गुस्से में उसकी गरदन तलवार से उड़ा दी। अपनी आज्ञा के विरोध में बात उठाना, यह उसे स्वीकार नहीं था। वह प्रतिवाद नहीं सुनेगा।

सब सन्न रह गए। आखिर आज सरदार को क्या हो गया है। सरदार सावधानी से बोला, "दल उस लड़की को अस्वीकार नहीं करेगा। यही मैं कहना चाहता हूँ। यदि कोई······।"

एक पुराना सदस्य उठा। सरदार के आगे कुछ कहे कि उसने उसे मार डाला। अब दल के सब लोग आश्चर्य से उसकी ओर देखने लगे। क्या सरदार पागल हो गया था? लेकिन सरदार ने कहना शुरू किया, "अन्याय को न्याय हम नहीं मानेंगे। नारी की निर्बल जाति के प्रति क्या यही हमारा कर्त्तव्य है। पर तुम सब अपने स्वार्थ के लिए चाहते हो कि सरदार पतित जीवन व्यतीत करे। यह आगे

नहीं होगा। अब मैंने इस लड़की को ठीक-ठीक पहचान लिया है। यह बात सबको स्वीकार कर लेनी चाहिए।"

सरदार का एक विश्वास-पात्र उठा। कहा, "यदि आज्ञा हो, मैं कुछ कहूँ।"

"क्या?" सरदार ने सवाल पूछा।

"हमारा सैनिक पेशा है। सरदार के ऊपर बड़ा उत्तरदायित्व है। नारियाँ मन बहलाव के लिए आदि काल से मानी गई हैं। सैनिकों की जाति नारी का सही आदर करना जानती है। सरदार आप अपना कर्तव्य न भूलें।"

"तो मैं यह भार न उठा सकूँगा। लो, मैं अपनी मौत का आदेश स्वयं देता हूँ। तुम दूसरा सरदार चुन लेना।" कहकर सरदार ने तलवार रखदी।

दल में सुरसुरी फैली। सब एक साथ बोले, "सरदार!"

सरदार इसका कोई उत्तर न दे सका।

आखिर एक सदस्य बोला, "जब तक हमें ठीक व्यक्ति न मिले, आप विवाह न करें। यह माया-ममता ठीक नहीं होती है। उस लड़की को अपने साथ रखलो। हम सबको यह बात स्वीकार होगी।"

वह नारी सरदार के साथ रही। सरदार के जीवन में परिवर्तन आ गया। वह युवती असहाय थी। कभी देखती थी कि सरदार की आँखों में उसके पिता की लाश तैर रही है। वह उदभ्रान्त हो उठती; किन्तु सरदार का सरल व्यवहार पा, चुप रहती। वह सरदार को प्यार करने लगी थी। उसके मन की घृणा फिर भी नहीं मिटी। लाचारी में वह उस पुरुष को अपना सर्वस्व सौंप चुकी थी। अब वह उसके लिए अपेक्षित थी। सरदार उस रमणी की इस कृतज्ञता को महसूस करता था। उसने यह समझ लिया कि उसका हृदय कोमल है—बहुत

कोमल। जरा ठीस लगते ही वह रोने लगती है। वह उसके लिए एक उपयोगी वस्तु नहीं रही। एक आपसी समझौता दोनों के बीच मूकता से हो गया। वह नारी कभी-कभी शासन करती थी। वह केवल कारण-सा रह जाता था। वह नारी अपने पिता के खूनी को बार-बार माफ कर देना चाहती थी। फिर भी, जो पिता के खून का दाग उसके हृदय पर बना हुआ था, उसे मिटाने की उसने कोई चेष्टा नहीं की। पहले तो पुरुष ने उसे जगाने की कोशिश नहीं की थी। धीरे-धीरे वह नारी उसके जीवन में पसरने लगी। अब वह बोलती और झगड़ा भी करती थी। कभी अनायास डर कर भाग जाती। उसने पुरुष का जीवन ही पलट दिया।

कुछ महीने कटे। नारी गर्भवती हुई। अब नारी के दिल में छुपी पीड़ा उभरी। आखिर यह क्या हो गया है। यही था क्या उस सारे प्रेम का अन्त? यह पुरुष नारी पर क्यों प्रहार किया करते हैं? वह तो पत्नी नहीं है। एक प्रेमिका की तरह उसके पास पड़ी हुई है। सरदार की वजह से दल वाले उसका आदर करते हैं। फिर भी सब यह जानते हैं कि वह सरदार की रखेली ही है। सरदार को विवाह करने की आशा नहीं है। वह घबड़ा उठती थी। सरदार जब बाहर रहता, वह और परेशान हो उठती थी। वह उससे बार-बार कहना चाह कर भी कुछ कह नहीं सकी। वह स्वयं कुछ नहीं कहता था, जानकर बोगा बना रहता। वही तब क्या कहे? बच्चे का लोभ उठता था, वह उसके प्रति अड़चन बरतना नहीं चाहती थी। लेकिन जब बच्चा होगा, तो वह उससे क्या कहेगी। यही न कि वह एक कलङ्क है। वह उसे पुरुष जाति से बदला लेना सिखलायेगी। यह उसके विद्रोह का अन्तिम निर्णय होता था।

नौ महीने बाद उसके लड़का हुआ। वह सारा दुःख भूल गई। बच्चे का चेहरा अपने पिता से मिलता-जुलता था, लेकिन उसकी आँखों में उसके मृत पिता की लाश का अक्स साफ़-साफ़ दीख पड़ता

था। वह चौंक उठी। उसके दिल में यह कैसी घृणा उठ जाती है। सब कुछ उसे धोखा लगा। सारा पिछला जीवन, पुरुष का फुसलाना, उसका बलिदान! बच्चे के रोने के साथ उसके हृदय में गुद्गुदी उठी, उसकी छातियाँ मचलीं।

दाई बोली, "लड़का हुआ है।"

वह खुशी से पुलक उठी।

तभी दाई ने पूछा, "तुम्हारी शादी हुई थी?"

"नहीं।"

"तब लड़के का क्या होगा?"

"लड़के का!"

"दल का निर्णय है कि वह अपना कानून नहीं बदल सकता है। तुम सरदार की पत्नी स्वीकार नहीं की जाओगी।"

"क्या!" वह आँखें फाड़-फाड़ कर उसे देखती रह गई। भीतर मन में एक घबड़ाहट शुरू हुई। वह बेचैन हुई। यह अब क्या होने वाला है।

"यह लड़का मैं ले जाऊँगी। दल की यही आज्ञा है। इसका जीवित रहना, दल की प्रतिष्ठा कम कर देगा।"

"क्या होगा तब?"

"इसे मारने का हुक्म हुआ है। एक बार प्यार करलो। तुम माँ हो। मुझे तुमसे हमदर्दी है। मैं परवश हूँ। क्या एक औरत माँ का दिल नहीं पहचान सकती है!"

वह सन्न रह गई। यह कैसा न्याय था। और उसका स्थान! वह रखैल है। जिसका दल में कोई मान नहीं है। अब वह क्या करेगा? यह उसके प्रति कैसा व्यवहार है। कुछ सोचकर वह बोली, "दाई, मैं तुम्हारा अहसान नहीं भूल सकूँगी। मैं बच्चे को अपने

हाथ से मारूँगी। यह मेरा अपना 'पाप' है। तुम तलवार छोड़ जाओ। उनको बुलवा दो। ताकि पीछे उनको अफसोस नहीं रहे।"

सरदार भीतर आया ही था कि उसने उसकी हत्या कर डाली। फिर खिलखिला कर हँसी। बच्चे को खूब नहलाया। बाहर दल के सामने आई। सब इस व्यवहार पर दङ्ग रह गए। वह बोली, "अभागे पुरुषों यही क्या तुम नारी की कीमत समझते हो। धन्य है तुम्हारा पुरुषत्व! यह तुम्हारा समाज, क्या कभी दूसरे की इज्जत करना भी सीखेगा! अब मैं इसकी हत्या कर सकती हूँ। मैंने तुम्हारे सरदार पर विश्वास किया, उसका बदला ले चुकी हूँ। पिता के हत्यारे को मैंने प्यार किया.........!"

वह फूट-फूट कर रोने लगी। बड़ी देर तक रोने के बाद गद्गद स्वर में बोली, "तुम्हारा यह कैसा अनुरोध था कि तुम मेरे बच्चे की मौत चाहते हो।"

कोई कुछ नहीं बोला। वह आगे बढ़ी। बच्चे को वहीं जमीन पर रख कर बोली, "अब लो, जो चाहो इसका करलो। मैं इसे तुमको सौंपती हूँ।" बहुत कमजोर होने के कारण वह वहीं पर गिर पड़ी और बेहोश हो गई।

वह बच्चा बड़ा हुआ। माँ ने उसे खूब प्यार किया। कभी-कभी वह बहुत रोती थी। उसने अपने पति की हत्या की, यह दुःख न भुला सकी। उस पुरुष ने उसके लिए क्या त्याग नहीं करना चाहा था। मन में भारी अकुलाहट उठती थी। अब वह बच्चा ही उसका सुख था। एक संकुचित आकर्षण उसके प्रति नहीं था। वह चाहती थी कि उसे खूब प्यार किया करे। फिर भी उसे अलग रखती थी। लोग कहते थे, वह बच्चे के प्रति उदासीन रहती है। धीरे-धीरे उसकी उदासी बढ़ने लगी। लड़के की ओर से उसने अपना ध्यान बिलकुल

हटा लिया। वह दिन भर खेलता रहता। आखिर डाकुओं की तरह रहने लग गया। उसने शराब पीनी सीखली। उसी तरह लूट-पाट में शामिल होता था। माँ जान कर चुप रहती। वह लड़का हर एक बात की पूरी जानकारी रखता था। उसने अपने जीवन की सारी बातें सुनी थीं। कभी उसके मन में कई बातें मैल की तरह तैरती थीं। अपना उसका जीवन बहुत दुःखद था। उसे माँ पर गुस्सा चढ़ता, क्यों वह उसके जीवन में रुकावट की तरह खड़ी हुई थी! उस समाज में उसका आज कोई स्थान नहीं था। सब लोग उसे सन्देह की दृष्टि से देखते थे। नया सरदार उसकी माँ के सौन्दर्य का बखान करता कि, उसने उसके पिता पर कैसा जादू डाल दिया था। उसका भीतरी पुरुष सर्वदा उसे निराश बनाये रहता था। वह चाह कर कठोर नहीं बन सका। अपने को बार-बार धोखा देता था। नारी से उसे स्वाभाविक घृणा हो गई थी। वह खूबसूरत लड़कियों को डायन समझता था। उनको अपनी दृष्टि से अलग रखता। वह दल का नारी के प्रति बरता व्यवहार देख कर कुछ कहता नहीं था। उसके भीतर एक अज्ञात नारी की तसवीर किसी ने बनादी थी। कभी वह सोचता कि वह उसकी माँ की तसवीर तो नहीं है।

सचमुच वह उसकी माँ की तसवीर ही थी। जिसका हाल कि दलवाले अक्सर सुनाते थे। वह बहुत मैला और भद्दा रूप था। वह लड़कियों को दूर से देख कर भाग जाता था। शराब खूब पीता दिल में फिर भी दिलेरी नहीं आती—अपनी कौम की दिलेरी! हत्या उससे न होती थी। नारी का रुदन सुनकर वह काँप उठता था। उनका दुःख उसे भारी लगता। जीवन में पग-पग पर सङ्कोच उठता था। उसका जीवन बहुत दुःखद था।

कुछ और साल कट गये। डाकुओं ने एक गाँव पर हमला किया था। भारी-भारी अत्याचारों के बाद महफिल रात को जमी थी। लूट-पाट का सामान बाँटा गया। उसे कुछ नहीं मिला। सरदार का

कहना था, "वह कायर है। तमाशा देख रहा था। पिता का कोई गुण उसमें नहीं आया।"

वह दल से निकाल दिया गया। वह घर नहीं लौटा। कई दिनों तक अकेला जङ्गलों-जङ्गलों में घूमता रहा। एक सप्ताह के बाद मध्य रात्रि को वह अपने गाँव लौटा—अपने मकान पर पहुँचा। उसकी माँ कुछ नहीं बोली। उसको देखती ही रह गई। उसके होंठ फट गए थे। कपड़े धज्जी-धज्जी हो रहे थे। कई जगह बदन पर काँटों की खुरचन थी। वह बोला, "मैं तुम्हारी हत्या करने आया हूँ।"

"मेरी!"

"या तुम मेरी हत्या करो। एक ही हम में से जीवित रह सकता है—दोनों नहीं!"

"मैं तैयार हूँ!"

"अच्छा, भगवान से अपने पाप की माफी माँग लो।"

"मैं भगवान पर विश्वास नहीं करती हूँ!"

"पति का ध्यान करोगी?"

"नहीं, वह मेरे पति ही कब थे?"

"तब तू निष्ठुर है। कोई और बात?"

"हाँ, मैं चाहती हूँ कि तुम दल से चले जाओ!"

"क्यों?"

"यहाँ मैं अपमानित हुई हूँ।"

वह अधिक नहीं सुन सका। माँ का अन्त कर दिया।

अब वह माँ का कटा सिर लेकर सरदार के दरवाजे पर पहुँचा। दरवाजा खटखटाया, सरदार बाहर आया और चुप रहा।

वह बोला, "मैं कायर नहीं हूँ।"

"यह तेरी माँ का सिर है न ?"

"हाँ !"

"तो, दल तेरा स्वागत करेगा।"

"वह मुझे नहीं चाहिये ?"

"क्या !"

"मैं दल छोड़ कर जा रहा हूँ।"

"क्यों ?"

"न पूछो वह। जब मैं अपनी माँ का सिर काटने को तैयार हुआ तो मेरी माँ ने आँखें मूँद ली थीं।"

बस, वह चला गया। अपने घर पहुँचा, माँ का धड़ कन्धे पर लटकाया। सिर हाथ में लिया। बाहर खड़ी लोगों की भीड़ को चीरता हुआ आगे बढ़ गया, आगे—आगे !

वह सपना था

तारा का दिल जेल के क्वार्टरों में नहीं लगता है। पास ही ऊँची लाल ईंटों से बनी दीवार का बहुत बड़ा घेरा है। उसके भीतर कैदियों की बस्ती फैली हुई है, जिसका ठीक सा अनुमान बाहर से नहीं लग पाता है। अभी-अभी उसका पति नई नौकरी पर सेन्ट्रल जेल में डिपुटी-जेलर होकर आया है, वह भी साथ साथ चली आई। पास ही दूसरे क्वार्टर में बड़ा जेलर रहता है। उनकी बेगम साहिबा अपने ही मिजाज में फूली हुई रहती हैं। उसके साथ इसी लिए तारा बैठना पसन्द नहीं करती है। उसका काम अपनी बड़ाई व डींग हाँकने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। कभी तो तारा मन-ही-मन बहुत खीज उठती है, लेकिन क्या करे। व्यवहार में सब कुछ बरतना ही पड़ता है। अपने ही कमरे में वह अकेली-अकेली बैठी रहती है। पति आठ बजे सुबह आफिस चले जाते हैं। बारह बजे आकर खाना खा कुछ देर आराम करते हैं, फिर तीन बजे आफिस जावेंगे। तारा के पास दिन भर कुछ खास काम नहीं रहता है। वैसे कई काम वह जुटाये रखती है। नई सिलाई की मशीन खरीदी है। उसी पर अपने पसन्द के जंपर, ब्लाउज, पेटीकोट—काट-छाँट कर सिया करती है। कुछ न हुआ तो जारजेट या और साड़ियों पर बेलें व जरी टाँकती है। नई उम्र है, नए-नए शौक पैदा होने में कुछ बड़ी देर थोड़े ही लगती है। साँझ को जेल का एक कैदी आता है। वह बरतन आदि धोकर, चौका पोत जाता है। सुबह वैसे ही काम चलता है। कभी-कभी जेल के बगीचे से तरकारी आ जाती है। शहर चार मील दूर है। महरी आ नहीं सकती और ठीक सा नौकर अभी नहीं मिला है। गुजारे के लिए इसी लिए फिलहाल सबको

यह इन्तजाम ठीक जँचा। खाना पकाना और गृहस्थी के कामों को तारा खुद ही अपने हाथों निपटा लेती है।

वहाँ अधिकतर वे ही कैदी हैं, जिनको एक लम्बे अरसे तक जेल काटनी है। सात-आठ साल से कम सजा वाला कोई नहीं है। या फिर वे कैदी हैं, जिनको राजनीतिक-षड्यन्त्र के मामलों में जेल हुई है। वह कैदी जो प्रति दिवस आता है, अधेड़ है; उसे एक खून के मुकदमे में पन्द्रह साल की सजा हुई थी। दस वह काट चुका है। कुछ थोड़े और साल बाकी हैं। उम्र चौंतीस-पैंतीस की होगी। वही जेल का पहनावा—जाँघिया व कुरता पहने रहता है। उसको कुछ कैदियों के ऊपर हुकूमत करने के अधिकार मिल गये हैं। लेकिन डिपुटी-साहब का काम खुद कर वह हर वक्त खुशामद में रहा करता है। ऐसा सुन्दर मौका वह दूसरों को सौंपने का पक्षपाती भला क्यों होने लगा!

सन्ध्या को पति आते हैं। वे कई बातों की चर्चा करते हैं। वह बड़े चाव से सब कुछ सुनती है। आस-पास के जिलों में फाँसी की सजा पाए हुए कैदी भी वहीं लाये जाते हैं। उनको वहीं फाँसी दी जाती है। जिस दिन किसी कैदी को फाँसी होने वाली होती है, पिछली रात को ही पति बड़ी सुबह उठने की हिदायत दे, घड़ी में एलार्म लगा देते हैं। लड़के उठ कर सब कामों से निपट, बिना चाय पिए ही चले जाते हैं। आठ-नौ बजे जब वह लौटते हैं, तो बहुत थके लगते हैं। तारा यह बात नहीं जानती है। उस वक्त की पति की उदासी तक को नहीं भाँप पाती। हाँ जब वह खाना ठीक तरह से नहीं खाते, तब वह पूछती है, "बात क्या है? आज तो आधा भी नहीं खाया?"

"क्या!" पति चौंक-सा उठता है।

"बड़ी सुबह चले गए थे। तबीयत तो खराब नहीं हो गई है?"

"कुछ नहीं ऐसा ही काम था।"

तारा फिर कुछ और सवाल नहीं करती है। छेद-छेद कर बातें पूछने की आदत अभी उसने नहीं बनाई है। यह उत्साह उसे नहीं रहता। कभी-कभी वे लोग इतवार या किसी छुट्टी को शहर चले जाते हैं। वहाँ से रोजाना काम की चीजें खरीद लाते हैं। वहाँ सिनेमा भी है। इसीलिए बड़ी रात गए वह उसे देख कर लौटते हैं। उसके पति की चौबीसों घंटे की नौकरी है। जेल का हाता छोड़ना मुश्किल ही रहता है। कभी तो बड़ी-बड़ी रात जेल का जमादार जगा कर ले जाता है। वह उठ कर चले जाते हैं। वह अकेले-अकेले लेटी सोचती है कि यह अच्छी नौकरी है!

वह कैदी प्रति दिवस माँजी को जेल के भीतर के किस्से सुनाया करता है। अपने पति की जिम्मेदारी की बातें सुन कर वह दङ्ग रह जाती है। बड़ी कठिन नौकरी है; वे लोग जो अपने जीवन में खून, डकैती तथा उदन्डता के काम करते हैं, उन पर हुकूमत करना आसान बात नहीं है। तो भी सब कैदी जानते हैं कि छुटकारा नहीं मिलेगा। काफी दिन उनको वहीं काटने हैं। इसीलिए समझदारी से रहते हैं। वैसे साधारण झगड़े और मार-पीट तो रोज की बात है। इस पर कोई अधिक विचार नहीं करता। न तारा को ही उन सब बातों से खास दिलचस्पी रह गई है।

तारा ने एक दिन पूछा "सुखराम तेरे घर में कौन-कौन हैं?"

"कोई नहीं माँजी।"

"क्यों?"

"अपना कोई कहने को नहीं है, होता तो जेल क्यों काटता। जमींदार के कहने से फँस गया।"

लेकिन भला तारा को उस जमींदार की कहानी से क्या दिलचस्पी हो सकती थी? कुछ मतलब नहीं है। सैकड़ों कैदी हैं, सबको अपनी कहानी होगी, कोई अपनी गलती थोड़े ही स्वीकार करेगा। खूनी

खून यह जान कर ही करता है कि फाँसी होगी। अपने प्राणों का जब कोई मोह नहीं रहता, तभी यह विकार बढ़ जाता है। उसे इन लोगों के किस्सों को सुन कर कोई फायदा नहीं है। यह सब तो कानूनी बातें हैं। बदमाशों को सजा देने की व्यवस्था बहुत दिनों से प्रचलित है।

सुखराम एक दिन सुबह कुछ देर करके आया। तारा का पति उस दिन बड़ी सुबह ही चला गया था। अभी, तक वह लौट कर नहीं आया था। नौ बज रहे थे, तारा ने पूछ ही डाला, "अभी साहब नहीं आये हैं?"

"कुछ न पूछो माँजी।"

"क्या हुआ है?"

"आज जिन्दगी में पहले-पहल फाँसी वाले कमरे में मेरी ड्यूटी लगी थी।"

"फाँसी!"

"हाँ माँजी। वह सब तो......। हर एक आदमी को मौत का बड़ा डर रहता है। चाहे वह खूनी ही क्यों न हो। फाँसी की तख्ती पर चढ़ते-चढ़ते वह इतना चिल्लाया और रोया था, कि......।"

"क्या कहा? यहाँ फाँसी भी लगती है!"

"जब से आप आयी हैं, नौ आदमियों को लग चुकी है।"

"तभी वे तड़के जाते हैं।"

लेकिन पति आ गये थे। बूट की आवाज सुन कर सुखराम चुपचाप अपना काम करने लगा। तारा ने पति को उदास पाया। भीतर जाकर बोली, "तब फाँसी में गये थे।"

"किसने कहा है?" पति चौकन्ने हुए।

"मैं सुन चुकी हूँ, इसमें कुछ खास बात नहीं है। जैसा जो करे सजा उसे मिलनी चाहिए।"

यदि और कोई यह बात कहता, तो वे दलील करते। उनकी समझ में नहीं आता था कि आदमी को आदमी का प्राण लेने का कौन सा अधिकार है? और यह तारा उसे स्वीकार कर रही है। जरा हिचक नहीं, कितना कठोर दिल है, कहीं मोह नहीं। वह फाँसी वाले हर एक कैदी की मौत के बाद उसके लिए अफसोस किया करते हैं। एक यह तारा है कि……।

"कुछ नाश्ता ले आऊँ।"

"नहीं।"

"खाना देर से बनेगा।"

वे कुछ नहीं बोले, उठकर बाहर जाने को थे कि तारा बोली, "कहाँ जा रहे हो?"

"आफिस"

"यह भी अच्छा दफ्तर है। रात-दिन वही काम! काम!! कुछ खाकर जाना, अभी तैयार किए देती हूँ।"

"भूख नहीं है, लौट कर खाना खा लूँगा" कहकर वे चले गए।

फिर तारा ने अनुरोध नहीं किया। क्यों वह मनावे? उनको भूख नहीं है, वही क्यों परेशान हो जाती है? काम, काम, काम…! अपनी जरा परवाह नहीं, घुलते चले जा रहे हैं। तन्दुरुस्ती तो सबसे बड़ी बात है। खाक में चली जाय यह नौकरी। कुछ नहीं, अपनी मेल-मुलाकात तक का कोई पास नहीं है। न कहीं आया-जाया जा सकता है। ऐसा अपना कोई नहीं, जिससे चार बात पूछी जा सकें। जङ्गली आदमियों के बीच की जिन्दगी ठहरी। उनको तो इतनी भी फिक्र नहीं है कि मेरी बात ही मान लें। मानो कि मैं कुछ नहीं हूँ। बिना खाये-पिये चले गए। सुबह-सुबह फाँसी! आराम जरा नहीं है!

"माँजी !"

तारा ने देखा कि सुखराम खड़ा था ।

"तू अभी गया नहीं रे ।"

"एक बात कहनी है ।"

"पैसा चाहिए । कुछ काम थोड़े ही है । गाँजा पीयेगा ।"

"वह तो पुरानी आदत है । अब क्या छूटेगी ?"

"मैं कब कहती हूँ—छोड़ दे ; खूब पिया कर । अच्छा, पैसे देती हूँ," कह कर, वह भीतर जाने को थी कि सुखराम बोला, "पैसा नहीं चाहिए माँजी ! कागज और पिन्सिल......।"

"क्या करेगा तू ?"

"योंही ।"

"तुझे लिखना आता है ?"

"आपसे झूठ क्या बोलूँ माँजी, एक लड़के ने मँगवाया है। उसे दूँगा ।"

"कौन है वह ?"

"दो महीने हुए उसे फाँसी का हुक्म हुआ है । सुना किसी गोरे साहब को उसने पिस्तौल से मारा था । लाट साहब के यहाँ लोगों ने अरजी दी है । अभी उसकी उम्र भी क्या है । मुश्किल से चौबीस पच्चीस होगी ।"

"किसके लिए वह चिट्ठी लिखेगा ?"

"अपने किसी दोस्त को ।"

"उसने खून किया—फाँसी होगी, तुझे क्या पड़ी है रे ?"

"माँजी आप क्या कह रही हैं ! जिस दिन से वह आया, किसी से बातें नहीं करता है । ढेर सारी किताबें साथ हैं । उनको ही पढ़ता रहता है । कभी कभी सुन्दर मीठे-मीठे गीत भी गाता है ।"

"तब उसने हत्या क्यों की ?"

"सुना एक अंगरेज बहुत जुल्म करता था। किसी ने उसे मार डाला। बहुत से जवान लड़के पकड़े गये। औरों को सजा हुई, इसको फाँसी लगेगी।"

"तब वह यहाँ फाँसी देने लाया गया है ?"

"हाँ माँजी ! उसके बचाने की कुछ भी उम्मेद नहीं है। हफ्ते दो हफ्ते में फाँसी हो जाएगी। बहुत हल्ला मचा हुआ है। लोग चन्दा कर रहे हैं।"

तारा चुप हो गई। कुछ ठीक बात दिल में नहीं सूझी। यह कैसी जगह है, कुछ समझ में नहीं आता है। लड़के को फाँसी होगी। और सुखराम को फ़िक्र पड़ी है। यह काम जेल के नियमों के विरुद्ध है। तब वह अपने पति के शासन में दखल नहीं देगी। पति के प्रति यह अविश्वास होगा। वह जड़वत कुछ देर बैठी रही। फिर सावधान हो, तरकारी छौंकने लगी। अजीब एक भावना उठती थी। पति ही जैसे उसका सब कुछ है। उसी के साथ सारी जिन्दगी चलेगी। उस लड़के को फाँसी होगी। फाँसी लगना यहाँ मामूली बात है। यह तो यहाँ की जेल का धन्धा ही है। वह क्यों कागज पेन्सिल दे ? नहीं देगी, नहीं देगी ! उसका यही कर्त्तव्य है। यह पति का अनादर है।

सुखराम तो है बेवकूफ ! यह ठीक बात नहीं। इन झमेलों में भला उसे क्या वास्ता है। वह खाना बनायेगी। पति आयेंगे, तो वह कहेगी आराम भी किया करो। काम तो लगा ही रहता है। लेकिन यह सुखराम कागज-पेन्सिल तो कहीं न कहीं से ले ही आयगा। तो वह पति से कहने की धमकी देकर उसे मना कर सकती है। वह बेचारा लाचार होगा। पति से उसे कुछ कहने का क्या अधिकार है ? वह उसकी कोई व्यक्तिगत बात तो है नहीं। जेल की भीतरी बातों से उसे कुछ सम्बन्ध नहीं रखना है। पति हैं ! उनसे वह अपनी

निजी बातों के अलावा और कुछ बातें क्यों कहा करे ? क्या उसी को कहना है; वे तो कुछ पूछते नहीं। सुखराम से पूछा, "चिट्ठी तू किसे देगा।"

"उनकी बहन शहर में आई है।"

"बहन !

"वह हर एक आदमी से दस्तखत करवाती फिरती है कि फाँसी न हो। कोई खास सबूत अदालत में नहीं मिला था। कालापानी हो जाय, यही सब चाहते हैं। उसे जीवित रहना चाहिए।"

"तू उनकी बहन को पहचानता है।"

"वे यहाँ मिलने आई थीं।"

"मिलने ?"

"परसों घण्टे भर मिलीं।"

"यदि तू चिट्ठी मुझे दिखलावेगा तो मैं कागज-पेन्सिल लाकर दे सकती हूँ।"

"आपसे कुछ छिपा थोड़े ही रहेगा माँजी।"

"मैं किसी से नहीं कहूँगी" कह कर तारा उठी। भीतर से कागज का टुकड़ा और पेन्सिल लाकर देदी। उस रूखे जीवन के बीच यह खेल उसे खूब पसन्द आया। न जाने कौन लड़का है ? उसकी कोई बहन है। उन दोनों के बीच मार्फत बन, तारा दोनों के दिल का हाल जान लेने को उत्सुक है।

दिन को तारा पड़ी रही। पति की वही उदासी थी। कुछ खास बातें नहीं हुईं। वैसे वे बोले, "यहाँ कैसा लग रहा है तारा ?"

"क्यों, क्या हो गया ?"

"शहर की चिड़िया को कहाँ फाँस लिया है। रोटी के लिए इन्सान को दुनिया भर में भटकना पड़ता है।"

"क्या ! मुझे तो अच्छा लगता है !"

"मैं कब कहता हूँ कि बुरा लग रहा है। और बुरा भी लगे तो इलाज कुछ नहीं।"

"लेकिन तुम तो..................।"

"काम बहुत ज्यादा है। बाज आया ऐसी अफसरी से। रोज कैदियों के झगड़े, मार-पीट और आए दिन फाँसी का इन्तजाम! जरा सी लापरवाई हो जाय, खरी-खोटी सुनने को मिलती हैं। बड़ी भारी परेशानी है।"

"मर्दों का यही काम होता है"...कहकर तारा मुस्कराई।

वह तारा चाहती है कि हर तरह पति को खुश रख सके। तन, मन, बचन; सब के साथ। उसे पति के पास आजीवन, एक लम्बे अरसे तक रहना है। अब वह उसी का अपना घर है।

पति फिर चुप रहे। उस मुद्रा को सुलझाने के लिए वह बोली, "पसन्द नहीं छोड़ दो, पहले तो अपनी तन्दुरुस्ती है।"

"नहीं, धीरे-धीरे आदत पड़ जायगी। नया काम मुश्किल ही लगता है। आगे सब ठीक हो जायगा।"

अब तारा खिल उठी। कहा, "शहर बहुत दिनों से नहीं गये।"

"परसों चले चलेंगे।"

"बहुत सारी चीजें अबकी लानी हैं।"

पति उठ कर जाने को थे कि वह बोली "अभी तो दो ही बजे हैं।" और छुईमुई की तरह उनसे लिपट गई। पति ने तारा को देखा। यह तारा क्या है? हर एक बात स्वीकार, कहीं रुकावट नहीं। पति के समीप रहना ही उसे सुहाता है, कहीं कड़ी नहीं; बिल्कुल सरल। पति ने तारा को चूम लिया। तारा सिमटी, उनकी बाहुँओं के बीच पड़ी ही रही। उठी नहीं, आँखें मूँद कर नींद का बहाना बनाया, वह पति को अपना समूचा जीवन अर्पण कर सकती है, वह सारी पति की ही है। पति के पीछे वह है, दुनियाँ में और

कोई उसका सगा नहीं है। उनके पास वह चार सीधी सी कड़ी बातें करते हिचकती नहीं। पति कुछ ऐतराज नहीं करता।

अब पति ने तारा को देखा। वह चुपचाप सोई हुई थी। देखा फिर—वह बहुत मुरझाई लगती थी। अपने दिल की पीड़ा वह छिपा क्यों लेती है? अकेले-अकेले उसे भला थोड़े ही लगता होगा। काफी वक्त गुजर गया। साढ़े तीन बज गए थे। सच ही तारा को गहरी नींद आ गई थी। वह निश्चित सी सोई हुई थी। वे उठे। एक बार तारा के माथे को चूम लिया। बाहर निकले और ऑफिस चले गए।

"माँजी!" तारा की नींद टूटी। पति पास नहीं थे। देखा, पाँच बज गए हैं। वह बड़ी देर तक सोई रह गई थी। सुखराम बाहर से पुकार रहा था। वह अस्तव्यस्त उसी तरह उठी और दरवाजा खोल दिया।

सुखराम गाँठ-गोभी, मटर और टमाटर लाया था। उनको एक ओर रख दिया। तारा बोली, "हरी मिर्च नहीं लाया।"

तारा को हरी मिर्च खाने का बहुत शौक है। वह बिना किसी झिझक के ही तीन-चार चबा लिया करती है। पति अक्सर टोकते हैं, वह नहीं मानती। चोरी से अब भी खाती है। सुखराम लज्जित हो बोला, "भूल ही गई, कल ले आऊँगा!" फिर चुपचाप अपना काम करने लग गया।

तारा ने चाय का पानी चढ़ाया। वे अब आते ही होंगे। मटर छीलने लगी। छीलती रही। सुखराम फिर आगे आकर बोला, "माँजी!"

तारा ने आँखों की पलकें ऊपर उठाईं। सुखराम के हाथ से चिट्ठी लेली। कहा, "सुबह पढ़ कर लौटाल दूँगी।" कमरे में गई,

अपना सन्दूक खोला। चिट्ठी हिफाजत के साथ उसी में बन्द करके रखदी।

पति लौट आए थे। कपड़े खोलने लगे। तारा उनको ठीक तरह से संभालने लगी। वे चारपाई पर बैठ गए। वह बोली, "चाय ले आऊँ।"

पति ने सिर हिलाया। उसने मेज आगे सरकाकर चाय लगादी। पति चाय पीते रहे। एक प्याला पीकर कहा, "तुम्हारे भाई की चिट्ठी आई है। तुमको बुलाया है।" कार्ड जेब से निकाल कर दे दिया।

तारा ने कार्ड उलट-पुलट कर देखा। अंग्रेजी में लिखा हुआ था। घसीट थी। पढ़ने में नहीं आया। तब पति हँस पड़े, बोले, "मेरा तो कोई कसूर है नहीं। उनको लिखदे कि साफ-साफ लिखा करें।"

तारा अपने आठवें दर्जे तक के ज्ञान से उसे पढ़ नहीं सकी। कहा फिर पति ने, "महीने-दो महीने को चली क्यों नहीं जाती।"

"अभी तो जाना हो नहीं सकता है।"

"तुम्हारी जीजी भी आई हुई हैं।"

"यहाँ का इन्तजाम ?"

"सुखराम ही खाना भी बना लिया करेगा।"

"यों क्यों नहीं कहते हो कि कैदियों के लंगर से रोटियाँ आ सकती हैं!" कह कर तारा हँस पड़ी।

"तब जाने दे। जैसे तेरी मर्जी हो।"

"नौकर आ जाय, तो चली जाऊँगी। जल्दी क्या है। जैसे आज गई वैसे ही महीने भर बाद सही।"

पति कुछ नहीं बोले। चाय पीकर बाहर चले गये। रोज साँझ को जेलर के बरामदे में 'ब्रिज' खेली जाती है। वक्त काटने का वह बुरा साधन नहीं है। तारा कभी-कभी रसोई से उनके हँसने की आवाज सुनती है। उसका पति हमेशा ही जीतता है। तारा फूली

नहीं समाती। पति की हँसी के बीच, एक क्षण अटक, अपने को भी भूल जाती है।

न जाने किस काम से खाना खाने के बाद, तारा ने अपना सन्दूक खोला। शायद चिकनी छालियाँ निकालनी थीं। पान आज चुक गए हैं खाने के बाद इलायची और छालियाँ ही देनी पड़ेंगी। वह बहुत लापरवा है। कोई कहे भी क्या? कितना हिसाब रखे? आज पान मंगवाना ही भूल गई थी। वह चिट्ठी तभी हाथ लग गई। वह डरी और सन्दूक बन्द कर दिया। पति के सामने वह उस सन्दूक को खोलने का साहस नहीं कर सकती। वह चुपचाप पति के आगे खड़ी हो गई। कुछ देर बाद थकी सी पास पड़ी कुर्सी पर बैठ गई कि पति ने पूछा, "पान नहीं हैं।"

"आज मँगवाना भूल गई" कह वह मंत्रमुग्धा सी उठी। सन्दूक खोल कर छालियाँ निकालीं—इलायची भी। छालियाँ सरोते से कतर कर तश्तरी पर रखदीं।

पति ने वह ले लीं। फिर कोई खास बातचीत नहीं हुई। वह भी चुपचाप पति से लगी सो गयी। पति को वह अपना सहारा गिनती है।

सुबह उसकी नींद टूटी। पति आफिस चले गए थे। सामने धूप चढ़ आई थी। अपने इस आलस्य पर वह झुंझलाई। पति ने उसे जाने से पहले जगाना उचित नहीं समझा। बिना चाय पिए ही वे चले गए थे। इस सहानुभूति से अक्सर वे उसे उबार लेने की कोशिश करते हैं। चटपट वह उठी। सन्दूक खोला। चिट्ठी निकाली और पढ़ने लगी। पेन्सिल से सुन्दर-सुन्दर अक्षरों में लिखा हुआ था :

प्यारी बिन्नी,

तुम उस दिन उतनी उदास चली गईं। क्या वह ठीक बात

थी ? दुनिया के कितने ही काम तुम लोगों के लिए पड़े हुए हैं। उनको भूल जाना अनुचित बात है। मुझे कुछ मालूम नहीं है कि उस संस्था का क्या हाल है ? हमने ही उसे स्थापित किया था। मेरा पूर्ण विश्वास है कि तुम लोग उसे सुचारु रूप से चला रही होगी। इधर-उधर दुनिया भर में तुम्हारा मारा-मारा फिरना मुझे नहीं सुहाता है। न उस हथियार---जनता के उतने दस्तखतों को परवा सरकार को है। यह उनका रोजाना का काम है। कोई बात इसी लिए उन पर लागू नहीं की जा सकती है। न जनता का उनको अधिक ख्याल ही रहता है।

कुछ हो, शायद एक बार फिर हमारी मुलाकात होगी। यहाँ यही खबर है कि सरकार इन छोटी-छोटी बातों के लिए अपना कानून नहीं बदलती है। तब एक या डेढ़ हफ्ता मुझे और जीना है। मैं उससे पहले यह जान लेने को उत्सुक हूँ कि तुमको कितनी सफलता मिली है। या भाई के नाम पर भीख माँगने का पेशा लेकर, तुम अपना ध्येय भूल गई हो। इस इतने बड़े आदर का पक्षपाती मैं नहीं हूँ। कई बातें छूटी-की-छूटी रह गई हैं। मुझे मौका ही नहीं मिला।

तेरी सहेली तारा अब कहाँ है ? मुझे कुछ मालूम नहीं। पिछले दिनों पूछना ही भूल गया। जब तू स्कूल में पढ़ती थी, तारा का जिक्र कई बार तूने किया था। वह हमारा साथ देने को तैयार थी, किन्तु हरएक तेज लड़की को अपने साथ लाने का पक्षपाती मैं नहीं हूँ। कई बातों का भार लड़कियों पर निर्भर है। हमें हरएक पहलू से सबल बनना है। तब तारा की बात पाँच-साल पुरानी हो गई है। क्या तुझे उसने चिट्ठी लिखी ? वह तब तो बड़ी भावुक थी। अब तुम दोनों मिल कर संस्था का भार संभाल लेना। वैसे अकेली तू ही सारी शक्ति बटोर सकती है।

हमारी संस्कृति में मरघट पर व्यक्ति को सौंप, उसके प्रति अधिक ममता बटोरने की प्रथा नहीं है। व्यक्ति की राख को पानी में बहा देते हैं। वस्तु की यादगार वाला चलन यहाँ नहीं। और यह मौत कभी दुनिया के रोजगार में रुकावट नहीं डाल सकी। कर्म पर विश्वास करने वाली जाति भविष्य की अधिक चिन्ता नहीं किया करती है।

आदर जिसका करना हमने सीखा है, उसकी रक्षा हमें ही करनी है। फिर भी, आदर की पूजा करनी अनुचित बात होगी। आदमी की पुजा करनी व्यर्थ बात है, इसके बाद अक्सर निराशा शुरू हो जाती है! मैं कुछ कहाँ हूँ? कर्त्तव्य हमारा होता है, वही हम सबका आदर्श है; हमारी इस संस्था का एक विशाल रूप देश में फैलेगा, यह निरर्थक फैली परेशानियाँ स्वयं ही लुप्त हो जायेंगी। न तब आदमी के ऊपर मजबूरियों का बोझा ही बाकी रहेगा। अस्वस्थता हट जायगी और देश स्वस्थ बनेगा। तब ही हमारा आदर्श मिलेगा और ध्येय पूर्ण होगा।

उत्तर जल्दी देना, तब मैं और बातें लिखूँगा। अब मेरा मन बहुत स्वस्थ है।

भाई तेरा—

—तारा सन्न और स्तंभित रह गई। यह अनिल की चिट्ठी थी तब अनिल को ही फाँसी होगी! अनिल ने वह संस्था खोली थी। एक बार बिनोदनी के साथ वह उसके घर आया था। बहुत बातें उसने कहीं थीं। देश की हालत का नग्न-चित्र खींचा था। तारा वादा करने में न चूकी थी कि वह मदद देगी। देश की बातों को सुन कर उसका दिल पसीज उठा था। आँखें भीज गई थीं। वह चुप ही रह गई। अनिल और विनोदिनी तीन-चार दिनों तक उनके मेहमान रहे थे।

फिर उसे उस अनिल के बारे में अधिक सुन लेने का अवसर नहीं मिला। अपने पिताजी के तबादले की वजह से वह वहाँ से चली आई थी। उसकी सहेली की पहले तो कई चिट्ठियाँ आईं, फिर सिलसिला बन्द हो गया। यह बहुत बड़ी दुनिया है। एक खासी तादाद में लोग यहाँ रहा करते हैं। रोज हर एक से मुलाकात होती है। याद सबकी नहीं रहती। जो नजदीक है, उसी से हेलमेल बढ़ जाता है। पहचान कितनों से की जाय। यादगारें रल और मिट जाती हैं; भूल सबल है।

फिर एक बार पत्र पढ़ा। विनोदिनी ने कई बार उसे अपने भइया के कालिज से आए पत्र पढ़ने को दिए थे। उन अक्षरों को वह अब अच्छी तरह पहचान गई। सच ही वह चिट्ठी अनिल की थी। अपराधी अनिल ने जेल के कानून को तोड़ कर अपनी बहन के पास चिट्ठी भेजने की मजबूरी प्रकट करदी। इस तरह पत्र भेजना जेल के अनुशासन को डांवाडोल कर देना है। उसके पति की नियुक्ति इस शासन को कायम रखने के लिए ही हुई है। वह उसके बीच यह व्यवहार फिर क्यों बरत गई? क्या उसका यह उत्तरदायित्व ठीक है? यह भार वह न संभाल सकेगी; पति के प्रति यह उसका अपना अविश्वास है। आज अनिल से ऊपर है उसका पति। अनिल की बातों से अधिक उसे पति के मान की रक्षा करनी है। वह पति को चिट्ठी सौंप कर कह सकती है कि अनिल के लिए उसके दिल में श्रद्धा है। अपना उसका कोई अभिमान और स्वार्थ नहीं है। वह उचित बात ही करता है। कल फांसी लग जाने पर भी कोई लोभ उसे न रहेगा। सोचेगा कि यही होना था। अपना उसका पेशा था, जिसका अंत फाँसी हो गई। यह फाँसी लगती ही रहती है। ये मनचले नौजवान कुछ अधिक विचार नहीं करते। कई मर चुके। मौत का डर उनको नहीं सताता है। हमेशा ही वे फाँसी पाने के लिए तैयार मिलेंगे। कुछ आनाकानी उनको नहीं है। यही उनकी अपेक्षा है।

यदि तारा चाहे, तो क्या अनिल को छुटकारा मिल सकता है? उसके हाथ में कुछ नहीं है। वह स्त्री है। गृहस्थी के भीतर के सिवाय बाहर की बातें कुछ थोड़े ही जानती है। दुनिया में अनिल के लिए हल्ला मचा है। उसे कुछ मालूम नहीं हुआ। यह सुखराम इस तरह नहीं सुनता, तब वह कुछ भी नहीं जान पाती। न वह कभी जिन्दगी के भीतर होशियारी से रहना ही जानती है। अनिल एक याद था और अधिक वह उसे कब पहचानती है? एक तूफान भी वह यदि है, कोई तारा की राय नहीं पूछेगा।

"माँजी"

"क्या है सुखराम?"

"वह चिट्ठी आपने पढ़ ली?"

तारा की उङ्गलियों के बीच वह चिट्ठी थी।

"अब वह नहीं जाएगा"

"क्यों!"

"बाबूजी ने मना किया है।"

"मना कर दिया?"

"आज सुबह तार आया है, दरख्वास्त मंजूर नहीं हुई। जल्दी ही फाँसी लगेगी।"

उसकी बहन को खबर मिली।"

"चुपके से सब काम होगा, बलवे का डर है।"

तारा की समझ में कुछ भी बात नहीं आयी। झगड़े के पीछे क्या भाई-बहन की आखिरी मुलाकात नहीं होगी? जनता और दुनिया को धोखा देकर फाँसी लगाना अनुचित लगा। लेकिन अनिल को मौत से पहले अपनी संस्था का हाल जरूर जान लेना चाहिए। उसको बड़ी हवस होगी कि सारी बातें सुन ले। यह सब जानने की आकांक्षा का मिट जाना गलत होगा ही। वह जाकर बिन्नी से

मिलेगी। सारी बातें समझा देगी। फिर यह नामुमकिन लगा। अनिल अपनी संस्था से क्या चाहता है ?

सुखराम अपना काम करता रहा। वह खुश है। माँजी से बातें करने में उसे कोई हिचक नहीं। वे दयालु हैं। उम्र भले ही उन्नीस-बीस की हो, लेकिन 'माँजी' का आसन सौंप वह निश्चित रहा करता है। इस माँजी से वह कुछ छिपाता नहीं है। जरूरत पर पैसे मिल जाते हैं। पहले एक दिन भारी झिझक के साथ उसने छै पैसे माँगे थे। "क्या करेगा ?" तारा ने पूछा था।

वह छिपा नहीं सका। साफ-साफ कह दिया था कि सुलफा बाजार से मँगवायेगा। उसे फूंक कर खूब नींद आती है। तारा तो पैसे देकर हँसदी थी।

तारा के मन में एकाएक यह बात उठी कि वह सुखराम के हाथ खुद चिट्ठी लिखकर भेजेगी। अनिल को विश्वास दिलाएगी कि संस्था का काम ठीक-ठीक चलेगा, संस्था कायम रहेगी—फौलाद की तरह कड़ी बन कर। कहीं रुकावट न रहेगी। फिर वह डरी। वह लाचार है। अनिल को कुछ नहीं लिख सकती है। उसका पति उसी जेल का हाकिम है। वह परवश है। उसके हाथ में कोई व्यवस्था नहीं।

सुखराम को अगले दिन चिट्ठी लौटाने का वादा उसने किया। गृहस्थी के काम में मशगूल हो गई। पति के आगे किसी तरह की उलझन वह प्रकट नहीं होने देना चाहती थी।

पति के आते ही सारा भय भाग गया। वह जैसे कि तारा को सँभाल लेते हैं। वह चिट्ठी तो सन्दूक में पड़ी हुई थी। अधिक उसकी परख उसे नहीं रही! पति आज जल्दी चले गए। कह गए थे कि शहर से बाहर उनको काम पर जाना है। शायद सुबह तक लौट कर आयेंगे। रात को उस क्वार्टर में सोने के लिए जमादार की बीबी आएगी।

तारा कुछ बोली नहीं। पति के चले जाने पर खिन्न-चित्त उसने

अनिल की चिट्ठी एक बार और पढ़ी ; कुछ जैसे कि उन लिखी बातों पर विश्वास नहीं होता था। मौत उस अनिल को कदापि नहीं आ सकती है। बहुत कुछ सोच कर उसने अनिल को एक चिट्ठी लिखी।

साँझ को कुछ खास बात नहीं हुई। रात को जमादार की बीबी के साथ बड़ी देर तक बातें करती-करती वह न जाने कबसो गई।

अगली सुबह उसकी नींद टूटी। वह बाहर आई! सोचा कि लौटने पर उनसे कहूँगी कि एक बार अनिल से मिलना चाहती हूँ। उसे कुछ तो सान्त्वना मिलेगी।

जेल के हाते में बड़ा हल्ला हो रहा था, उसकी समझ में कुछ नहीं आया। पति से वह यह अधिकार माँग लेने के लिए तत्पर थी। यह अनुरोध वे जरूर मान लेंगे, यही सहज विश्वास था। वह पति के आगे सारी बातें रख देगी। पति से परदा नहीं है। वह अनिल को ठीक-ठीक समझावेगी कि उसकी बातों पर कोई दुनिया में रुकावट अब नहीं डाल सकता है।

सुखराम आया था। चुपचाप सिर झुकाए खड़ा रहा, बहुत चिन्तित जैसे कि हो।

भारी भीड़वाला हल्ला भी भीतर अब सुनाई पड़ने लग गया था। तारा ने पूछा, 'सुखराम यह क्या हो रहा है?"

"माँजी कल रात अनिल बाबू को फाँसी लग गई।"

"फाँसी!" उसने अवाक रह कर दुहराया।

"हम लोगों तक को मालूम नहीं हुआ। आधी रात गोरों की पलटन आई थी। सब इन्तजाम किया गया। उनकी लाश नदी के किनारे जलाने भेज दी गई। छोटे साहब साथ गए हैं।"

तारा ने सब बातें ठीक तरह सुनीं या नहीं। समझ नहीं सकी कि बात क्या थी? यह सच था या सपना।

एक विराम

खट्, खट्, खट्; किसी ने दरवाजा खटखटाया।

जाड़े की रात। तीन दिन से लगातार बरफ की झड़ी लगी थी। पिछले दिन ही सारी धरती बरफ से ढक चुकी थी। आधी रात, यह दरवाजा खटखटाना! भला राकेश रजाई के भीतर से उठना चाहता। उसकी तबीयत तो कर रही थी कि होगा कोई। कहीं कमरे में कम्बलों के बीच नौकर गहरी नींद सोया हुआ था। उसे जगाना व्यर्थ लगा। फिर लाचार हो उठ, नीचे उतर कर उसने दरवाजा खोला। देखा कि विपिन खड़ा है। आश्चर्य में बोला, "तू विपिन!"

"हाँ दादा।"

"कहाँ रहा इतने दिनों?"

"इतने दिनों?"

"दो साल तो गुजर चुके। तू तो जल्दी ही लौट आने का वादा करके गया था।"

"गया था जरूर, लेकिन दुनिया की झँझटों के बीच फँस गया।" कह, विपिन ने दरवाजा बन्द कर दिया। दोनों ऊपर कमरे में पहुँचे। विपिन ने भीगे कपड़े बदल डाले। बरसाती एक ओर सँवार कर रख दिया और कम्बल ओढ़ सोफा पर पूरा फैल गया।

"कोको पियेगा न?"

"मैं खुद बना लूँगा।"

"आराम कर। तू आया कहाँ से है।"

" '_____' से ।"

"दस मील पैदल चल कर ।"

"क्या करता ? आश्रय ठीक-सा वहाँ नहीं था । आकर तुमको अपना सारा हाल सुना देना चाहता था । अब लगता है, यह इतनी उतावली एक गलत बात थी ।"

"सौदामिनी जीजी के घर टिक जाता ।"

"इतनी सामर्थ नहीं थी । अपने में भीतर दुःख बटोर, भारी एक पीड़ा के साथ अहसान बन, किसी गृहस्थ में टिकना अब अनुचित लगता है ।"

"लेकिन सौदामिनी जीजी तो…!"

"ठीक है बात । तुम्हारी जीजी ने दादा रक्षाबन्धन के दिन, राखी बाँधकर मुझे दुनिया में चलने को मजबूर किया था । सारा वह घर, वह बटोरी सामग्री और पिता जी की किताबों की आलमारियाँ जब एक-एक करके नीलाम में बिक चुकी थीं, और असहाय-सा तुम्हारे दरवाजे पर खड़ा हुआ था ।"

"यह क्या बातें कर रहा है । इतनी भावुकता । बात क्या है ?"

"अपना आदर खोलना देख, तुम छुप जाना चाहते हो । यह नहीं होगा । उस दिन जब कि चुपचाप मुरझाया कुर्सी पर बैठा, मैं सिगार फूँक रहा था, जीजी तुमको राखी बाँधने आयी थी । मुझे देख झिझक कर वह लौट पड़ी । तभी तुमने उठकर बुला, वह राखी मेरे हाथ पर बँधवा दी थी ।"

"तेरा तर्क खतम थोड़े ही होगा । खाने को कुछ नहीं है । डबल-रोटी, मक्खन और आमलेट से काम चला लेगा । ले आऊँ ?"

"स्वार्थ अपना कैसे भुला दूँ । भूख आधे रास्ते में लग गई थी । एक छोटी टूटी-फूटी-सी दूकान से तेल की जलेबियाँ और

पकोड़ियाँ लेकर खाते पेट को समझाया था कि राकेश दादा के यहाँ दावत मिलेगी।"

"जीजी सुनेगी, तू इतनी रात, इस तरह......!"

"दस मील की चढ़ाई, फिर बर्फ का गिरना; और जीजी को तो मालूम हो ही गया है ?"

"क्या विपिन ?"

"दादा, माफी जीजी से माँगनी पड़ेगी। जीजी अपने मकान के छज्जे पर खड़ी थी। मैंने उसे देख कर आँखें नीची कर ली थीं और चुपके-चुपके आगे बढ़ गया था।"

"यह एक भारी अपराध तूने कर डाला है।"

"जानकर, जीजी उदार है। परिस्थिति समझा कर जब एक दिन उसके आगे खड़ा होऊँगा, वह कुछ कहेगी नहीं। याद नहीं है वह दिन ?"

"कौन विपिन ?"

"वही, जब कि जीजी की मेज का श्रृङ्गारदान वाला बड़ा आईना मेरे हाथ से छूट कर, चूर-चूर हो गिर पड़ा था।"

"मुझे कुछ मालूम नहीं।"

"तुम शायद बाहर बैडमिन्टन खेल रहे थे।"

"जाने दे—जाने दे, उन बातों को। खाने-पीने का कुछ तो इन्तजाम करलूँ। बार-बार तुझसे कहता हूँ, भाभी कहीं से एक ले आ। वही तेरी मेहमानदारी करेगी। मुझे भी चन्द सहूलियतें मिल जावेंगी।"

"मैं समझा था कि......!"

"यही न, दरवाजा खोल कर जैसे ही तू भीतर आवेगा, बच्चे के रोने की आवाज कान में पड़ेगी। तुझे नीचे गोसलखाने के कमरे में जगह मिलेगी। उसके लिए अपरिचित जो होगा।" कह राकेश

उठा। दूसरे कमरे से चीजें वगैरह ले आया। केटली आग पर चढ़ाता हुआ बोला "ठंड बहुत है।"

"कुछ न पूछो दादा।"

"आजकल तो यहाँ पंछी भी नहीं चेतता है।"

"अच्छा, तुमको उम्मीद थी कि मैं आऊँगा।"

"हमेशा, हर घड़ी। तेरा ठीक ही क्या है।"

"और जीजी को भी यही उम्मीद रहती है।"

"तेरा हाल ही ऐसा है।"

"सुनो, जीजी बहुत नाखुश है।"

"क्यों।"

"तीन साल हुए, एक दिन कुछ मिनट को उसके घर गया था। जीजी, बोली थी— विपिन, तेरे लिए पुल-ओवर बुनने की सोच रही थी। अच्छा ही हुआ कि तू आ गया है। समझ में नहीं आता था कि एक सौ बीस घरों वाली बुनूं या एक सौ चौबीस घरों की।—— और जीजी ने उसी वक्त बुननी शुरू करदी थी। कहा था कि 'चिट्ठी देना'। - तीन साल हो गये हैं।"

"यह ठीक बात नहीं है विपिन।"

"जो भी हो, किन्तु... ..."

"सिगरेट चाहिए। वह सामने आलमारी में डिब्बा रखा है। सिगार पीना चाहे, वहीं है।"

"लेकिन दादा···!"

"क्या? बोलता क्यों नहीं है। हिचक किस बात की है।"

"ब्रांडी इत्यादि नहीं होगी।"

"पिछले साल से छोड़ चुका हूँ। निमोनिया हुआ था। डाक्टरों ने मनाही की है। जीजी ने अपनी भारी कसमें देकर छूने तक की मुमानियत की है। कल मंगवा दूँगा।"

"मैं तो अपने साथ लाया था। कुछ पी और रास्ते में बोतल टूट गई। जाने दो।"

"इन दो सालों में तूने एक चिट्ठी तक नहीं भेजी, न किसी का जवाब ही दिया।"

"पिछले साल भर मन ठीक नहीं रहा—अस्वस्थ था और......।"

"और क्या ?"

"उसीके लिये आधी रात तक सफर कर, तुम्हारा दरवाजा खटखटाना पड़ा है।"

"विपिन !"

"राकेश दादा, दिल में उठता यह सारा विद्रोह, राख मुझे बना देता, उचित बात थी। असह्य यह सब है। अनायास आई घटना, जब आदमी को घेर लेती है, असहाय आदमी क्या करे। दुःख कुहरा-सा उठकर ढक डाले, एक-एक भारी दिन कटने मुश्किल हो जाते हैं।"

"क्या खूब सीख कर आया है, यह दर्शन-शास्त्र !"

"मजबूरी में आदमी सोचना शुरू करता है। आदमी का दिमागी विकार ही तो सारे विद्रोह की जड़ है। आज वह विद्रोह निपट गया। खाली मैं हूँ। इसी लिये दौड़ा-दौड़ा तुम्हारे चरणों में आया हूँ।"

"क्या विपिन ?"

"सुमित्रा का नाम सुना है।"

"कौन, वह किसन की बहू !"

"सच-सच बतलाओ, तुमने उसके बारे में क्या सुना है !"

"कुछ नहीं।"

"झूठ बात है। अहसान यह क्यों बरत रहे हो।"

"झूठ !"

"मुझसे भी छुपा दोगे !"

"आखिर बात क्या है ?"

"सुमित्रा को खूब नजदीक से पहचान कर......।"

"किसी नारी पर तर्क करने से कुछ फायदा नहीं है ।"

"लेकिन वह तो मेरे जीवन में एक विराम बनाकर भाग गई ।"

"एक विराम !"

"हाँ, एक अध्याय के बाद, यह पाकर मैं जड़ बन गया । भारी उलझन हट गई । सुनोगे न । सुमित्रा तो......।"

"पहले ठीक खा-पी ले । तेरी दास्तान कभी खतम थोड़े ही होगी ।"

"तब क्या मैं गढ़-गढ़ कर बीच में चलता हूँ ।"

"गुस्सा हो गया है विपिन ?"

"नहीं दादा ।"

"ले ।" कह कर उठ, राकेश ने मेज पर बिस्कुट, टोस्ट, आमलेट वगैरह रख दिये ।

विपिन ने प्याला मुँह से लगाया और चुपचाप पीने लगा । अब राकेश ने देखा विपिन बिलकुल थका, सुस्त और उदास था । कोई गहरा भेद जैसे कि भीतर छुपाये, वह संवारे हुए हो ।

"वह सुमित्रा विपिन......"

"वही मैं खुद सोच रहा हूँ । सुनो, आठ महीने तक सुमित्रा को खूब नजदीक से देखने का मौका मिला है । एक दिन उनका सारा परिवार, मेरे मामा के साथ टिक गया । सुमित्रा के श्वसुर, उसकी सास, उसकी देवरानी और उसका बच्चा ।"

"लेकिन विपिन, सुना कि सुमित्रा को उसका पति त्याग चुका है ।"

"यह मुझे पहले मालूम नहीं था । घर में आने पर, जब तक वे शहर तथा अन्य सब बातों से परिचित नहीं हो गये, मुझे ही

उनकी मेहमानदारी का भार उठा, सारी जिम्मेदारी लेनी पड़ी थी। सुमित्रा को अपने बच्चे तक की ज्यादा परवा नहीं रहती थी। नौकरानी के सुपुर्द वह बच्चा दिन भर रहता था। रात को माँ के पास ही लगे छोटे पलंग पर फिर वह सुला दिया जाता था। न उसे अपने शरीर की हिफाजत की फिक्र रहती थी, नहीं ठीक से पहनावे का ख्याल। अपनी कोई सहूलियत की चाहना उसे नहीं थी। न कोई खास व्यवहार-वर्ताव था। मुझे कभी दुनिया से अलग थोड़े ही रहना है। वे भी साथ हो लिये। सुमित्रा की फीकी, निर्जीव उच्छृङ्खलता को पाकर एक दिन उसके त्याग देने की बात अनजाने चुपके कोई सुना गया था।

"एक दिन सोकर उठ, प्याले में चाय उड़ेल रहा था देखा, सुमित्रा दरवाजे पर खड़ी है। भीतर आकर बोली, 'राइटिङ्ग-पैड' है। मेरा खतम हो गया। जरूरी एक चिट्ठी लिखनी है।'

'चाय पीलो।'

'एक प्याला लेकर तो बैठे हो।'

'दूसरा मैं मँगवा लेता हूँ।'

'पैड तो दो।'

"मैंने दूसरे कमरे से पैड लाकर दे दिया। प्याले में चिम्मच चलाता ही रहा। सोचा, पति इसे त्याग चुका है। चरित्रहीन समाज के लोग घोषित कर चुके हैं। मन बुझा कर मैंने चाय पी डाली। एक-दो टोस्ट खा लिए।

"घण्टे-भर बाद सुमित्रा आकर बोली, 'पता लिफाफे पर लिखदो। मेरी राइटिङ्ग खराब है।'

"एक कागज पर उसने अपने पति का पता लिखा। लिफाफा मैंने 'टाइप' कर दिया। वह चली गई। मन के भीतर बात उठी थी, पति को तब आज भी वह चिट्ठी लिखती है। क्या उसने लिखा

होगा ? क्या कभी वह पति को अपना बना सकेगी। खूब सारी नारी कोमलता और लज्जा उसमें थी। सरलता से अपना सगा किसी को साबित करना उसने जाना था।

"अपने उस बच्चे को पाकर वह खुश नहीं थी। माँ बन नारी जिस तरह खिली लगती है, वह गुण मैंने उसमें नहीं पाया। आँखें बिलकुल खाली लगतीं। काली डेबलियों के भीतर सुफेदी में जैसे कि खोखलापन आ गया हो।

"कालेज की तैयारी कर सीटी बजाता एक दिन मैं किताब आलमारी से निकाल रहा था। तभी वह आकर बोली, 'विपिन बाबू!'

"आँखें उठा कर मैंने देखा। वह कहने लगी, 'यह सब किताबें तो खतम हो गईं। नई आज लेते आना।'

"सुमित्रा को किताबों के पढ़ने के शौक के साथ ही उनको समझ लेने वाला ज्ञान भी था। अक्षरों की भीतरी अनुभूति पर अपनी एक राय कायम करने वाली शक्ति उसमें थी। शुरू से ही सुमित्रा ने साधारण परिचय के बाद, किताबों की माँग पेश की थी। मैं उस अनुरोध को मान गया था।

"और सुमित्रा चली गयी थी। उन किताबों को उठा कर, बाहर साइकिल पर बाँध रहा था कि सबका सब गिर पड़ीं। उनको एक-एक कर उठाया और ठीक तरह से रख रहा था कि देखा, एक लिफाफा नीचे गिरा पड़ा है। एक भारी उत्सुकता ने मुझे घेर लिया। साइकिल वहीं पर खड़ी करदी। चिट्ठी पढ़ डाली। तीन साल पुरानी वह चिट्ठी थी। छोटी सी :

रानी

जीवन एक फरेब और धोखा है। सावधान रह कर भी तो इतना सब कुछ कब जाना था। दुलहिन तुम बन गईं और सारा झगड़ा अपने साथ ले गई हो--मनोरथ।

"मनोरथ का एक सुन्दर फोटो साथ था।

"कि सुमित्रा आई। सँकुचित हो बोली, दूसरे की चिट्ठी इस तरह पढ़ना ?'

"अवाक मैं रह गया था।"

'खैर, सारी दुनिया जब जानती है, तब तुम ही विराने कहाँ हो। किसी और के हाथ पड़ जाती, भारी एक हथियार मुझे मिटा डालने का बन जाता।"

'क्या ?'

'दुनिया में एक दिन लड़के दूसरों की हिफाजत का कुछ ख्याल नहीं रखते हैं। उनमें ही यह मनोरथ था। परिचित वह था। लेकिन लम्बी ऊटपटाँग चिट्ठी लिख कर, चाहता था कि मैं उनका जवाब दूँ। शादी के बाद भी वे चिट्ठियाँ आनी बन्द नहीं हुई। अपने भारी प्रेम की दुहाई दे-देकर, उसने मेरा सारी गृहस्थी को उजाड़ डाला।'

"कालेज का वक्त हो गया। मैं बाहर आया और चुपचाप कालेज चला गया था।"

"विपिन दुनिया तो कहती है कि वह बच्चा भी मनोरथ का है। सच हो या झूठ ; दुनिया में इस अपवाद का फैल जाना अनुचित बात थी।"

"तुमने सुमित्रा को देखा है ?"

"हाँ, एक दिन जीजी की ससुराल में वह बैठने आयी थी। जीजी से बचपन का उसका दोस्ताना है।"

"जीजी की राय क्या है ?"

"वह कुछ नहीं कहती।"

"लेकिन राकेश, उसके चेहरे की उदासी और फीकापन तो डस डालता था। उसीको समाज़ ने क्यों चुन लिया। ठीक-सा भेद कोई

नहीं जानता है। सुमित्रा की बात को इस तरह, समाज के भीतर फैलाने में किसन का भी हाथ था।"

"किसन का! अजीब-अजीब बातें तू कहाँ से जमा करके ले आता है।"

"सुमित्रा ने यह बात मुझसे कही थी।"

"तुझसे कही!"

"न जाने क्यों सुमित्रा का मुझ पर इतना विश्वास हो गया था। मैं एक दिन बड़ी रात को सिनेमा से लौट कर आया था। कमरे में कपड़े उतार रहा था कि देखा, सुमित्रा मेरे पढ़ने की टेबुल पर, पढ़ते-पढ़ते इतमीनान से सो गई थी। यह अधिकार कभी उसने मुझसे नहीं माँगा था। चुपके मैंने देखा कि कोई हिन्दी की मासिक पत्रिका खुली पड़ी है। और खुले वे पन्ने, खूब आँसुओं से भीग गए थे। उन मुँदी आँखों को देख कर लगा कि वे अलसा बहुत गई थीं। दूसरे कमरे में जाकर मैंने नौकर को पुकारा। सुमित्रा की नींद उचट गई। छटपटाती वह खड़ी हुई। पत्रिका बन्द करदी। कुर्सी छोड़कर खड़ी हुई। फिर बैठ गई। असमर्थ जैसे कि वह थी। या थक बहुत गई हो।

"कुछ देर बाद उठते हुए वह बोली, 'अकेले-अकेले सिनेमा चले जाया करते हो। किसी को खबर तक नहीं देते।'

'तो क्या ढिंढोरा पिटवाता?'

'हम लोग आज साथ-साथ देख आते। कल अब बहाना बनाओगे कि देख आया हूँ।'

'अच्छी फिल्म तो है नहीं।'

'लोग बड़ी तारीफ कर रहे हैं।'

"इस बीच नौकर खाना ले आया था। बहुत ठण्डा खाना देखकर सुमित्रा बोली, 'खाना खाकर गये होते।'

''तब भूख नहीं थी। अब जितना खाया जा सकेगा, ठूँस लिया जावेगा।'

'घर में कोई होता, तो शोर मचा डालते।'

'यह आदत नहीं है।'

'गुस्सा तुमको नहीं। यही सासजी कहती थीं।'

''बात पलटते मैं बोला—'कौन-सी कहानी पढ़ डाली है। फिर इस तरह चोरी से दूसरों की मेज पर सो जाना? यह इरादा करके तो नहीं आयी थी कि सारी विद्या बटोर कर ले जाऊँ।'

'बड़ी देर तक तुम्हारा इन्तजार किया। एक तमाशा दिखलाने आयी हूँ।'

'तमाशा?'

'मनोरथ ने एक और चिट्ठी भेजी है। खूब रङ्गीन लिफाफा है। 'रजिस्टर्ड' आई, नहीं तो बड़ी फजीहत हो जाती।'

'तो मुझे उससे क्या मतलब है?'

'क्या इस मनोरथ के बारे में, पहली चिट्ठी पढ़ लेने के बाद, तुमने कोई भी छानबीन नहीं की है।'

'खाली वक्त मिलता, तो शायद जरूर करता। मुझे कुछ खास उत्साह उस बात को लेकर नहीं हुआ। वह मनोरथ का फोटो बहुत सुन्दर था।'

'सिर्फ मेरे लिए भेजने की फोटो पर पैसे खर्च किए गए थे।''

'तुमने कोई माँग पेश की होगी।'

''कहती हूँ, एक भी अक्षर आज आज तक लिखकर मैंने नहीं भेजा है। उनको रोकने वाला कोई दर्जा मुझे ढूँढे नहीं मिलता। जानकर कि यह कितना अन्याय मेरे ऊपर है, अनजान बने यह सारे करतब जान गये हैं। और इस घर में आकर एक दिन पाया कि पत्नित्व का दरजा देकर स्वामी मुझे जरूर लाये थे, मतलब उनके कुछ और ही थे।'

'क्या कहा ?'

'पास-पड़ोस, मुहल्ले की लड़कियों का आदर करना उन्होंने कभी नहीं सीखा था। रुपए के बल पर वह सब चालू रहा। वह मैं कैसे सह लेती। मेरी आड़ ले कर तो यह अनुचित बात थी। इसी के लिए कुलटा मुझे कह, अब अलग उनका भार हो गया है।'

"मैं अचरज में रह गया था। सुमित्रा ने वह सब क्यों सुनाया था। वह व्यवहार कुछ भी समझ में नहीं आया। और सुधार करना मैं चाहता, वश की बात नहीं थी।"

"हमेशा एक पहेली लेकर तू आया करता है विपिन। एक प्याला और पी ले। तेरी बातें कभी खतम नहीं होंगी। जीजी यही कहती थी।"

"क्या कहती थीं, दादा ?"

"यही कि विपिन मर्द जरूर है, स्वभाव लड़कियों का-सा लाया है।"

"ठीक है, ठीक है! एक दिन मैं आया था। चाय की फिक्र थी। जीजी सो रही थी। इधर-उधर ताका, नौकर नहीं मिला। चुपके रसोई में जाकर, मैंने आग जला चाय का पानी चढ़ा दिया। और पकौड़ियाँ बनाने के लिए आलू छील रहा था कि जीजी ने कमरे में झाँक कर कहा था, 'कौन, विपिन ?'

'हाँ जीजी।'

'क्या कर रहा है रे ?'

'चाय का इन्तजाम।'

'मुझे जगा लेता।'

'जब खुद बनानी नहीं आती तभी तो!'

'उठ, अब मैं आ गई हूँ।' कह कर जीजी पहुँच पकौड़ियाँ बनाने लग गई थी।"

"एक दो टोस्ट तो और खा ले। बड़ा जाड़ा पड़ रहा है, अभी से बरफ पड़ गई।"

"सुमित्रा को एक दिन भी खूब पहचान नहीं सका। अधूरा ज्ञान ही मेरा रह गया। दोपहर को एक दिन कालेज से लौटकर आया, तो नौकर बोला, 'सुमित्रा बीबी की तबीयत दिन से खराब है।'

"वहाँ पहुँच कर देखा, सच ही सुमित्रा चारपाई पर एक ओर मुरझायी, आँखें मूँद लेटी हुई थी। उसकी सास और देवरानी कहीं बैठने चली गई थीं।'

'तबीयत खराब है क्या।' मैं बोला था।

'हाँ।' वह बोली, 'सिर-दर्द है।'

'कोई 'परगटिव' लिया होता। पेट की खराबी होगी।'

'यू-डी-क्लोन तो होगा!'

"और मैंने पानी और यू-डी-क्लोन से तर रूमाल उसके माथे पर रख दिया। पूछा फिर, 'उदास लगती हो!'

'नहीं तो।'

'कुछ बात जरूर है।'

'छेद-छेद कर पूछना कब से सीख गए हो।'

'यह बात नहीं है!'

'फिर क्या है?'

'तेरे भीतर, मन में बहुत मैल जमा हो गया है।'

'झूठ है।'

'झूठ बोल कर मुझे कोई भारी दौलत तो मिल नहीं जायगी।'

'फिर.........'

'खैर' कह कर मैं बाहर जाने को था कि सुमित्रा ने पूछा, 'कहाँ जा रहे हो!'

'टेनिस खेलने।'

'कब तक लौट आओगे!'

'वहाँ से 'पैलेस' जाने का इरादा है।'

'रोज-रोज सिनेमा।'

'वक्त काटने का बुरा साधन नहीं है।'

'हम भी चलते, लेकिन......।'

'मैं चाची से पूछ लूँगा।'

'नहीं सासजी तो......।'

'फिल्म बहुत अच्छा है। चलना पड़ेगा। तैयार रहना।'

'जल्दी 'टेनिस' से लौट आना।'

'बात क्या है!'

'फिर बतला दूँगी।'

"मैं खेलने चला गया था। लौटकर आया तो देखा कि सुमित्रा का पति बाहर बैठा हुआ है। साधारण परिचय के बाद, भीतर जाकर मैं सुमित्रा से बोला—'सिर दर्द की 'डोज' आ गई है।'

"वह बहुत कुम्हला गई थी। कुछ बोल नहीं सकी। उसके पति और मैंने साथ-साथ खाना खाया। फिर सिनेमा चले गए। लौट कर जब आए, तब वे बोले---बहुत काम बाकी है। आपके ही 'बेड रूम' में पलँग लग जावे आपको दिक्कत तो नहीं होगी!'

"मैं कुछ नहीं कह सका। बात जान कर लाचार और चुप रह गया। मैं आगे सुमित्रा को रोज देखता था। वह कुछ बोलती नहीं थी। चुप रहना सीख गई थी और मेरे आगे आते ही लाज से गड़ जाती। जिस भेद को खोल कर वह मुझे सौंप चुकी थी, उसका कोई उपाय मेरे पास नहीं था। चार दिन रह कर उसका स्वामी चला गया।

"पाँचवें दिन बड़ी सुबह उठ कर मैं पढ़ रहा था। दबे पाँव सुमित्रा न जाने कब आकर खड़ी हो गई। आलस्य की भारी अँगड़ाई लेने जब मैं कुर्सी की पीठ पर पूरा फैला, तभी मेरा हाथ उसकी साड़ी से छू गया। मैं चौंक उठा। देखा, सुमित्रा ही थी। बोली वह, 'विपिन बाबू, स्त्री क्या कुचल डालने को एक खिलौना ही है।'

'गलत यह धारणा है।'

'फिर पति क्यों उसका ख्याल नहीं करता है !'

'गैर जिम्मेदार वह होगा।'

'सब—सब हैं, सारी पुरुष जाति।'

'क्या कहा !'

'पत्नी, पति में चाहे कितने ही दोष हों भूल सकती है। लेकिन पति······।'

'पति गुलाम बन जाते हैं।'

'यह पुरुषों का फैलाया विद्रोह है।'

'आखिर बात क्या है ? एक बड़ी समस्या लेकर आयी हो।'

'तुम मेरे वकील बन कर मनोरथ को एक चिट्ठी लिख दो। मैं उसके साथ भाग जाने को तैयार हूँ।'

'और यह गृहस्थ...।'

'बच्चे का गला घोंट, इस गृहस्थ में आग लगा कर चल दूँगी।'

'यह सब अनुचित है।'

'उचित है। अब मेरा पति पर कोई विश्वास नहीं रह गया है। मनोरथ मेरी ठीक परवा कर लेने वाली शक्ति रखता है।'

'मनोरथ ?'

'समझी ! यही कि मनोरथ भी एक दिन ठुकरा देगा। तब अपमान सहने की आदी हो जाऊँगी। इस घर में रहने को मन नहीं करता। थक बहुत गई हूँ अब।'

'आँख उठा कर मैंने देखा, सुमित्रा का चेहरा लाल था। समझ गया कि वह बीमार है। उसके हाथ को लिया, बहुत गरम था। बुखार में ही उठ कर वह चली आई थी। मैं बोला, 'तुम तो बीमार हो, चलो पहुँचा आऊँ। कब से बुखार आया है ?'

'मैं ठीक हूँ, खुद चली जाऊँगी।' कह कर वह चली गई थी।

"सुमित्रा फिर उठी नहीं। न जाने कब से यह बीमारी उसने पाल ली थी। बीमारी बढ़ती ही चली गई। सारा दुःख और सारी पीड़ा मन के भीतर फैल चुकी थी। डाक्टरों ने कहा टी० बी० हो गया है। सेनिटोरियम में भेजने की व्यवस्था की गई। जाने से पहली रात वह मुझसे बोली थी, 'विपिन बाबू, मुझे माफ करना।'

'क्या?'

'अब ज्यादा जाना मुझे नहीं है।'

'झर-झर मेरी आँखों से आँसू बह निकले।

'छी रोते हो मर्द हो कर।'

'नहीं, नहीं।' मैं बोला।

'और जी कर ही मुझे क्या करना है।'

'जी कर?'

'मनोरथ को उठा, पति को दबाने की चाहना खोल, जो बात मैंने तुमको सौंपी थी, उससे अन्यथा कुछ न समझ लेना।'

'क्या?'

'मनोरथ जब छोटा लड़का था, तब मैं बच्ची थी। हम दोनों एक साथ खेलते थे, कभी लड़ भी जाया करते थे। लेकिन थोड़ी देर बाद ही घुल-मिल कर बातें करने लगते। उस बचपन में अनजाने अपने शरीर के एक-एक नग्न अङ्ग को कब छुपाया था! वही हवाला बार-बार उकसाने को, अपनी चिट्ठियों में दिया करता है।'

'यह व्यर्थ बात है।'

'नहीं, अब सोचती हूँ वह ईमानदारी के साथ मुझे निभाता। और आज यदि बच्चे को लेकर उसके दरवाजे पर खड़ी हो जाऊँ तो वह उसी आदर से अपने घर में जगह देगा।'

'विश्वास नहीं आता!'

'शादी के बाद वह मेरी गृहस्थी में एक दिन आया था। वही

पुराना सारा रोना उसका था । मैं बोली थी— यहाँ तुम मत आया करो । वह चुपके चला गया । फिर कभी नहीं आया ।'

'लेकिन चिट्ठियाँ ?'

'अपने दिल की आग बुझाने, यही एक साधन बनाए हैं ।'

'यह सब तुम क्या बक रही हो ?'

"तब ही वह चेत गई । बुखार की तेजी से थक कर हारी निर्जीव बिस्तर पर लेट गई । और अगले दिन वह चली गई थी ।"

'विपिन, सुमित्रा ने मनोरथ के बारे में दो राय जाहिर की हैं ।"

"हाँ ।"

"पहली अविश्वास की धारणा, जो नारी पुरुष के प्रति सदा से बरतती आई है और दूसरी ......।"

"नहीं दादा, उसका विश्वास तो ...?"

"यही न कि उसकी नारी कोमलता पिघल गई थी । मनोरथ पुरुष था इसी लिए सुमित्रा ने उसे क्षमा कर दिया ।"

"दादा ! दादा !! क्या तुम कह रहे हो ?"

"अन्यथा वह अपनी बचपन वाली भावुकता की नजीर क्यों पेश करती ?"

"बचपन की भावुकता ?"

"वह साबित करना चाहती थी कि वह मनोरथ का नग्न अंगों का देख लेना उसका अपना बल था । खैर जाने दे वह सब, अपनी दास्तान तो सुना ?"

"राकेश दादा, परसों तार आया था कि सुमित्रा की हालत बहुत खराब है । वहाँ पहुँचा उसकी लाश मिली । मुट्ठी में मनोरथ का फोटो था ।"

"फिर ......।"

"वहीं से तो दौड़ा-दौड़ा चला आया हूँ, इस 'एक विराम' की कहानी सुना लेने !"

आश्रय

वह गन्दी गली है। सुमन उधर ही जा रहा है। वह शहर का सड़ा-गला मोहल्ला है। वह इधर-उधर नहीं देखता है कि उसे कोई पहचान लेगा। वह इनसान की तरह बढ़ रहा है। दुनियाँ से उसे कोई सरोकार नहीं। अब उसे कोई जानता नहीं होगा। वह तीन साल बाद इस शहर में आया है। कहीं कोई अन्तर मालूम नहीं पड़ता। ठीक, यही तो वह गली है। सामने सड़क पर बिजली कम्पनी का लैम्प-पोस्ट है। उस पर खतरे का विज्ञापन टँगा हुआ है। उस से लगी दूकान के ऊपर मञ्जिल में एक दरजी की दूकान है। वहाँ उसका साइन-बोर्ड टँगा है। मशीन खट-खट-खट चल रही है। वही आवाज उसने पहले कई बार सुनी थी। उसके नीचे एक तम्बाकिन की दूकान है। वह अधेड़ औरत है। इस तीन साल के अरसे में चेहरे पर कोई फर्क नहीं पड़ा। उसके चाहने वाले शहर के गुंडे हैं। वे सरेशाम वहाँ बैठा करते हैं। अपनी उस चहेती को, दूध, रबड़ी, लस्सी और जो फरमायश वह करेगी, हाजिर करेंगे। वह बच्चों की तरह टुकुर-टुकुर उनको ताका करेगी। चार मिट्टी के तेल के कनस्तर कहीं से लाये गए हैं। उन पर एक चौड़ा पटरा बिछा रहता है। वहीं वे सब बैठते हैं। सिगरेट दूकान में है। कोकीन खास खरीदारों को मिल जायेगी। चरस से भरी सिगरेट, वहाँ फूँकी जावेंगी। उनकी खुशबू सारी गली को ढक लेती है। वह ऊपर बैठ कर दूकानदारी नहीं करती। उन लोगों के साथ बीच में बैठी, सिगरेट फूँकती गप्पें लगाती रहेगी। यदि ग्राहक आवेगा, कोई यार उठ कर सौदा देगा और पैसा उधर, ऊपर गद्दी की ओर फेंक देता है। कोई मनचला अश्लील मजाक करेगा, तो वह हँस देगी। वह

उनको जवाब देती है। अश्लील-रूप में, उनकी 'अम्मी' बनने को तैयार है। वे यार 'बेटा' भी बन जाते हैं। दुनिया की दृष्टि में उनका चरित्र नहीं है।

सुमत इस तरह राय नहीं देगा। वह कहता है, सब का चरित्र है। उस औरत का अपना सिद्धान्त है। वह नीच नहीं। उसे वह घृणा की निगाह से नहीं देखता। कई बार पहले वह उनकी उस बैठक में शामिल हो चुका है। उसने आधी-आधी रातें वहाँ गपशप में काटी थीं। आज वहाँ नहीं जाना चाहता है। वह अपने को न जाने क्यों गिरा हुआ पाता है। उसके भीतर कोई चिल्ला-चिल्ला कर कहता है— वह निम्न है, निम्न है, निम्न है! अन्यथा वह वहाँ बैठ कर गपशप लगाता। इन तीन साल के किस्सों को सुनाता, जिससे वे सब भौंचक्के रह जाते। वह डरता है कहीं कोई उसे पहचान न ले। वह चुपचाप खिसक आया है। उनकी आँखों से दूर हट जाने पर, उसने एक ठंडी साँस ली। क्या वह कुछ अन्तर नहीं भाँप रहा था? इधर इस गली में, वह चेचक के दाग वाली छोकरी खाट पर पड़ी रहती थी। वह तो नहीं दीख पड़ती है। कहीं चली गई होगी। उसकी जगह यहाँ, यह चुड़ैल की सी सूरतवाली कहाँ से आ गई है। उसकी सूरत देख कर सारे शरीर पर घृणा से सिहरन फैल गई। यह पेशाब की बदबू। ये न जाने यहाँ कैसे रहती होंगी। उसने नाक बन्द कर ली। सोचा, इनकी जिन्दगी ऐसी ही है। ये बेचारी इसी तरह दो-चार आना कमा कर गुजारा करती हैं। इन लोगों का पेट पालने का यही आखिरी जरिया है! इस गन्दी गली को रोशन करने को ही, इनकी पैदायश एक दिन हुई। ये शहर की आबादी बढ़ाती हैं और वह तो अरे,......। वह भौंचक्का खड़ा रह गया। यह क्या हाल है। वह तो ढल गई। गालों के गड्ढे साफ-साफ दीख पड़ते हैं। उस पर सस्ता पाउडर? वह भीतर हँस

पड़ा। उन दिनों इसके नाज-नखरे कैसे थे। आज लँगूर की तरह मुँह लगता है। अच्छा नक्शा बन गया।

हैं, यह क्या ! कोई जानवर मरा पड़ा है। तब मर गया। उसे यही गली और परिस्तान मरने को मिला है। सड़ गया है। इतनी बदबू तभी है। ये सब नागरिक हैं। इनकी रक्षा के लिए नगर में म्युनिसिपैलिटी का दफ्तर है। वह संस्था इनसे टैक्स वसूल करती है। इनकी आमदनी का हिसाब वहाँ रजिस्टरों पर चढ़ता है और वह··· बदजात कहीं की। हाथ से धोती उठाये पेशाब करेगी। जहाँ जरा अँधेरा हो गया, वहीं मौका पा गई। कैसी बेशरम औरत है। कुछ तो हया चाहिए। यार खड़ा है। उससे बातें करती जाती है। वह लाज नहीं बरतेगी। सामने म्युनिसिपैलिटी ने लालटेन लगाई है। उसकी चिमनी टूटी पड़ी है। धुआँ फैलता जा रहा है। रोशनी थोड़ी-थोड़ी पड़ रही है। वह औरत अब जैसे कि सड़े कुत्ते को तारने की सोच रही हो। जरा सफाई का खयाल नहीं। मनों फिनायल यहाँ डाली जाए, वह सदियों से चलती बदबू हटेगी नहीं। ये औरतें ऐसी ही यहाँ रहेंगी। जब एक मर जावेगी, किसी दूसरी के बसते देर थोड़े ही लगती है। बड़ी अजीब औरतें हैं। सरे आम चिल्ला-चिल्ला कर मोल-भाव कर रही हैं। यार को ले गई, दरवाजा बन्द करना तक जरूरी नहीं। परदा डाल दिया गया—काफी है। बाहर कोई दूसरा आ जावे भीतर से खाँस देवेगी। वह बाहर इन्तजार करता रहेगा। वह परदा कानूनी धारा की तरह पड़ा रहेगा कि, भीतर आने की इजाजत नहीं है।

"कहो बाबू" सुमत चौंक उठा। सामने कुरसी पर बैठी, एक अधेड़ उसे उँगली के इशारे से बुला रही थी।

"क्या है ?" पास पहुँच, भारी हिचक के साथ, उसने पूछा।

"यह कोई पूछने की बात है। चार आने लूँगी।"

किसी ने जैसे कि पैना डङ्क मारा हो। वह एकाएक पीछे हट गया। कुछ देर उसे देख, बिना कुछ जवाब दिए ही पीछे फिर गया। वह तो चिल्ला रही थी, "आ गए साले, बदमाश कहीं के। टीम-टाम बना कर चले आते हैं। जेब में फूटी कौड़ी नहीं। जैसे कि अपनी अम्मा से मुलाकात करने चले जा रहे हों।"

पहले कोई ऐसा कहता, सुमत उसके चार हाथ जमा, मरम्मत कर देता। आज उसे गुस्सा नहीं चढ़ा। अपनी निम्नता पहचान हर तरह की गाली सह लेने की आदत उसे है। उसको कोई घमण्ड नहीं। पीछे फिर कर उसने नहीं देखा। उसे उसकी सूरत से नफरत हो गई। वह तो कोई ऐसा आदमी नहीं है। ऐसा कोई डर नहीं। उसकी पहचान की एक लड़की यहाँ रहती थी उसी के पास जा रहा है। आज निराश्रय है। उसका कहीं घर नहीं। जेल से छूटने के बाद, वह कहीं जा सकता है। वह दुनिया में और कहीं नहीं जा सकता है। वह बदमाश है। एक दिन मारपीट करने के लिये कानून ने नागरिकों की हिफाजत करने भेज दिया था। वह वहाँ रहा। सारी कठिनाइयाँ सहीं। हजारों गालियाँ सुनीं। उस जीवन का आदी बन गया। सारी मनुष्यता भूल गया। मार पड़ने पर, वह पागलों की तरह खीसें निकाल हँसता था। वहाँ के सङ्ग की वजह, आगे कहीं जीवन में रुकावट नहीं मालूम पड़ी थी। दिन भर मन लगा कर काम करता। डाँट-डपट और गाली सुन कर हँस देना सीख लिया था। उसको ठीक-ठीक कोई बात समझ में नहीं आती थी।

—आज सन्ध्या को उसे सुनाया गया कि उसकी बाकी सजा माफ कर दी गई है। वह भौंचक्का खड़ा का खड़ा रह गया था। सोचने लगा कि कहाँ जावेगा। बाहर लाकर, मुक्त कर दिया गया था। एक बार ललचाई आँखों से उसने उस बड़े लोहे के सीकचों वाले फाटक को देखा। वहाँ सन्तरी पहरा दे रहे थे। फिर उसकी निगाह, ऊँची

ईंटों की दीवार पर पड़ी। उसी के भीतर उसने पूरे तीन साल काटे थे। जेल में उसका कोई सगा साथी नहीं था, जान-पहचान के बहुत कैदी थे। एक बार वह उनके सामने खड़ा होकर कह देना चाहता था— मैं मुक्त हो गया हूँ। अब मुझे परेशानियाँ घेर रही हैं। तुम भाग्यवान हो। तुम्हारा समाज है। मैं अभी बाहर जाने को तैयार नहीं था।

उसकी कोठरी से बाहर, कबूतरों ने छप्पर पर घोंसला बनाया था। वहीं एक कबूतर का जोड़ा था। उसने शुरू मौसम से उनको भाँपा था। पहले न जाने वह जोड़ा कहाँ से एक दिन उड़ कर आ गया। आगे उसने देखा, दोनों अपनी चोंचों में तिनके और चीथड़े लाया करते हैं। उसे अन्दाज हुआ कि कबूतरी गर्भवती है। अब वह अण्डा देगी। फिर कई दिनों तक कबूतरी घोंसले में भीतर ही रही। वह कबूतर को कभी-कभी देख, कहा करता था—मियाँ, क्या हो रहा है। यों ही टहल किए जाओ; भाग्यवान हो। तुम्हारे गृहस्थी है। आगे फिर वह जोड़ा साथ-साथ बाहर आया-जाया करता था। एक दिन सुबह उसने बच्चों की चें-चें सुनी। वह उस जोड़े को रोज देख कर दिन काट लेता था। कुछ महीनों के बाद वे बच्चे न जाने कहाँ उड़ कर चले गए थे। अब फिर नर और मादा खेलते रहते। उसने सब कुछ आईने में देखा था। उनकी 'गुटरगूँ—गुटरगूँ' वह बड़ी सुबह सुनता था। कभी आधी आधी रात को, वह गुटरगूँ—गुटरगूँ की आवाज रोशनदान से भीतर पहुँच जाती थी। वह सो नहीं सकता था। उस कबूतर के जोड़े से उसके दिल को भारी सान्त्वना मिलती थी। उनके खेल को देख कर अपना सारा दुःख भूल जाता था। वह अच्छी तरह मन लगा कर अपना काम करता। किसी से लड़ता नहीं था। इसी तरह उसने एक बड़ा भारी वक्त काट लिया था। आज तक वह निश्चिन्त था। उसका एक रोजाना जीवन था। उसे कोई खास फिक्र नहीं थी। वह आश्रय के भीतर था। जेल के नियमित कानून थे

उनका पालन करना हर एक का कर्तव्य था। अपनी इस स्वतन्त्रता के समाचार से उसे जरा खुशी नहीं हुई थी। वह अवाक् खड़ा का खड़ा जेलर को ताकता ही रह गया था। तभी जेलर गुस्से में बोला, "आँखें फाड़-फाड़ क्या देख रहा है। अरे, इसका अँगूठा ले लो। बस-बस अब जा! देख, ऐसा कोई काम न करना कि फिर यहाँ आना पड़े।"

वह बाहर आया। सड़क पर पैदल चलने लगा। पाँव जोर-जोर से पटकता था कि कोई उनकी आवाज सुन ले। वह जेल के बाहर था। आवाज जरूर बदल गई होगी। वह जेलखाना पीछे छूट गया था। उसने इधर-उधर नहीं देखा। कैदियों वाली झिझक कहाँ छूटी थी। वह हमेशा कैदी पुकारा जावेगा। जेलखाना हो आया है। एक बार छूट कर भी वह कैदी ही रहेगा। और वह कहाँ जा रहा है मिल की ओर। वहाँ जाकर क्या करेगा! वह मिल का 'भोंपू' बज रहा है। जब उसे सजा हुई थी, तब तो हड़ताल थी। अच्छा, फिर काम शुरू हो गया है। वहाँ से कुछ मजदूर बाहर आ गए थे। वह उनकी निगाह में कसूरवार है। वह सजा काट आया है। वे आज उसके साथी नहीं हैं। तब तो वे सब कहते थे—मिल उखाड़ देंगे, मर जावेंगे। यह अत्याचार वे नहीं सह सकते हैं।

क्या यह 'मिल' चल रही है। वह तो सोचता था कि मिल टूट गई थी। मालिकों के उस जुल्म के बाद, वहाँ कोई काम नहीं करेगा। उसे क्या याद नहीं था कि वहाँ गोलियाँ चली थीं। कई मजदूर मर गए थे। वे मजदूर धरे-कपड़े जाते थे, गोरी पलटन बुलाई गई। उन पर मुकदमा चला। वे कसूरवार साबित हुए। उसे तीन साल और कुछ महीने की जेल हुई थी। उसका अपराध था। सब अपराधी थे। जेल हुई थी। नहीं, ये सब लोग यहाँ क्यों काम करने लगे हैं। तब क्या उसने गलती की थी। यह सब बातें जेल में सोचने का मौका नहीं मिला। उसका ख्याल था, मजदूर-सभा काम कर

रही होगी। वह छूट जावेगा, उसके विरुद्ध झूठा मुकदमा चला था। तब सब ने उसे यही आश्वासन दिया था। सब ने कसमें खाई थीं कि उस पिशाचिनी मिल को नेस्तनाबूद कर चैन लेवेंगे। वह चल रही है। उसको जेल हुई। यहाँ काम रुका नहीं रहा। मिल चलती रही है। वहां वहाँ नहीं रहा। उसे जेल काटनी जरूरी थी।

लेकिन वह चौंक उठा। सच ही वह तो गिरवर की बहू की आवाज थी। गिरवर कुछ दिन पहले हड़ताल करने में पकड़ा गया था। उस पर मुकदमा चल रहा था। वह 'पिकेटिङ्ग' से लौट, बिना खाना खाए, थका-माँदा लेटा था। पाँच दिनों से दाना-पानी कुछ पास न था। आधी रात किसी ने उसका दरवाजा खटखटाया। चौंक कर उठ, उसने खोल दिया। देखा, उस गरीब गिरवर की बहू की हालत खराब थी। वह अधिक खड़ी न रह सकी। कुछ बोली नहीं। धड़ाम से गिर पड़ी। उसे उस वक्त चरस का नशा चढ़ा हुआ था। वह होश में आया। चिमनी जलायी। गिरवर की बहू का मुँह सफेद पड़ा हुआ था। नाक से खून बहने लगा। उसकी सारी धोती पर खून के दाग थे। हैरत में पड़, वह खड़ा ही रह गया। कुछ सोच, पानी के छींटे उस लड़की के मुँह पर दिये। बड़ी देर के बाद वह होश में आयी।

वह तभी बोली थी, "सुमत, उन लोगों ने मेरी दुरगत की। अब मेरी जिन्दगी फजूल है।"

"कौन थे वह?"

"वही नए छोटे मैनेजर।"

"जो पिछले महीने आया है।"

"पाँच-सात आदमी मुझे पकड़ कर मोटर पर ले गए थे। अब मेरा जीना व्यर्थ है।" कह कर वह जोर-जोर से फर्श पर सिर पटकने लगी। मुँह से खून बह रहा था। सुमत स्तब्ध रह गया। कुछ देर

खड़ा रहा। कुछ सोच कर फिर बाहर निकला। मोटी लाठी हाथ में थी। नये मैनेजर के 'क्वार्टर' पर पहुँचा। वहीं बाकी रात खड़ा का खड़ा रहा। सुबह मैनेजर बाहर निकल रहा था कि सिर पर लाठी मार दी। इसके बाद तीन साल की सजा हुई थी। जेल में उसने सुना था कि अगले दिन पिकेटिङ्ग करने गिरधर की वहू गई थी। एक गोली में खतम हो गई। मजदूर उसकी लाश का जलूस निकाल रहे थे। पुलीस ने वह छीन ली थी।

तभी सुमत के मन में, घृणा हो गई थी। जेल जाते उसने सोचा था कि छूटते ही बदला लेगा। तब क्या वह अब वही करेगा। उत्साह फीका पड़ गया था। उस मिल को खड़ी देख कर उसने सारी मजदूर-जाति को नामर्दी के लिए धिक्कारा। उस मजदूर-सभा को गालियाँ दीं, जो पहले उसकी पीठ ठोंकती थी। उसका एक भी सदस्य उससे मिलने कभी जेल में नहीं आया था। सुमत अपनी राय देना चाहता था। अब वह किसी मजदूर के आगे पड़ना नहीं चाहता है।

सुमत दौड़ने लगा। वह बड़ी दूर, दो मील तक दौड़ता ही रहा। हाँफने लगा। उसका दिल धड़क रहा था। अपनी ही आहट पा बार-बार चौंक कर, वह पीछे देखता था। जैसे कि न हो, कहीं मजदूरों का दल आकर पकड़, कह दे—यही बड़ा बनता था सबका रक्षक। यही है वह सुमत, जिसे तीन साल की जेल हुई है।

उसे देख कर, सब उस पर उँगली उठावेंगे। वह उनके आगे खड़ा नहीं होना चाहता है। उसे उनके पुरुषार्थ पर हँसी आ रही थी। पहले वह रोज-रोज जेल में सबका इन्तजार करता रहता था। एक पुराने कैदी के कहने पर कि और बहुत सारी जेलें हैं। उसने सोचा, सब वहीं भेज दिये गए होंगे। वे पीछे हटने वाले नहीं थे। उन सबका सारा हल्ला उसे याद था। तब वह सोचता था, सब बहादुर हैं। यह जान कर कि वे इतने निकम्मे और कमजोर निकले

हैं, उसे बहुत अफसोस हुआ। अब वह पेड़ के नीचे बैठ गया। तब क्या करेगा। इस दुनिया में रहना, बड़ी मुश्किल बात है। उसे कहीं आश्रय चाहिए। वह पड़ा रहेगा। तब आगे की देख ली जायगी। वह कुछ-न-कुछ करेगा ही। खाली थोड़े ही बैठ सकता है।

वह कभी-कभी मजदूरों के साथ शहर जाया करता था। वहीं उसने ये गलियाँ देखी थीं। एक लड़की से उसकी दोस्ती थी। उस लड़की के लिए वह बहुत-सी चीजें ले जाया करता था। वह पेशे से तङ्ग आ गई थी। वह उसे अपने साथ रखने को तैयार था। वह भी उसके घर बैठने को तैयार थी। वह कभी आनाकानी नहीं करती थी। यदि यह झगड़ा व हड़ताल नहीं होती तो दोनों आज साथ-साथ रहते। वह तम्बोलिन उसकी इस बात पर हँसी उड़ाती कहती थी—"रंडी एक की नहीं होती है। किसी दिन सब माल-असबाब लेकर दूसरे के घर बैठ जायगी।"

हँसकर, सुमत कहता था, "मैं उसे जोर करके थोड़े ही ले जा रहा हूँ।"

"हम भी देख लेवेंगे।" वह तम्बोलिन आँखें मटका कर कहती थी। आसपास बैठे लोफर ठहाका मार, हँस पड़ते थे।

सुमत पैसा देते कहता, "एक सिगरेट और तीन पैसे की पुड़िया।"

"अपनी उस ठकुराइन को सिगरेट भर कर पिलाया करता है।" तम्बोलिन अनायास मुस्कराती हुई कहती, "मैं तो अभी...!"

"वाह अम्मी! अभी पन्द्रह साल की छोकरी है न।" एक न्यूमट कहता और गाने लगता, 'काँटा लागो री देवरिया, मो सों गैल चली ना जाय!'

सिगरेट और पुड़िया, दूसरा उठकर दे, सुनाता, "भाग्यवान् है सुमत। हमें तो वह छोकरी टेरती तक नहीं।"

क्या सुमत वहीं जा रहा है। उसने बड़ी देर पेड़ के नीचे बैठकर सोचा था कि वह कहाँ जावेगा। उस लड़की के यहाँ जाने में उसे हिचक थी। कौन जाने, वह पुराना इकरार भूल गई हो। जब उसके साथियों ने साथ नहीं दिया, तब वह तो बाजारू औरत ठहरी। तो उसे कहीं-न-कहीं जाना ही है। वह इस तरह चल-फिर कर रात नहीं काट सकेगा। जेल में उसे थोड़े पैसे मिले थे। सब सौंप कर कहेगा, इतना ही उसके पास है। वह सिर्फ एक रात रहना चाहता है। जब वह अनुरोध करेगा, शायद वह टाल नहीं सकेगी। कुछ हो, कहीं-न-कहीं वह रहेगा ही। वह ना करेगी और आश्रय ढूँढ़ेगा—वह, जो अभी गाली देती थी। उसी गाली देने वाला के पास पड़ा रहेगा। जो माँगेगी, दे देगा। रात वह गुजारना चाहता है। कल सुबह वह आगे के लिए कुछ-न-कुछ सोच ही लेगा। तभी उसके मन में कोई कहता था—तुम कैदी थे सुमत। बदमाश हो। तुम पर कोई भला आदमी एतबार नहीं करेगा। क्या तुम यह नहीं जानते हो? तुम्हारा सारी हिम्मत, व्यर्थ बकवाद-सा है। कोई उस तर्क पर आज विश्वास नहीं कर सकता है।

वह आगे बढ़ रहा था। एक जगह कीचड़ से पाँव सन गया। आगे पतली नाली ही रह गई थी। वह दीवाल के सहारे आगे बढ़ने लगा। अब दरवाजे पर पहुँच गया था। उसने दरवाजा खट-खटाया। कोई आवाज नहीं मिली। दूसरी बार खटखटाया। चुप्पी पा, धक्का दिया। दरवाजा गिर पड़ा। न जाने कब से जीर्ण था। वह भीतर पहुँचा। आँगन में घास जम रही थी। जाले व मकड़ियों का आधिपत्य आगे मिला। कोई छोटा जानवर उसके पाँवों का खटका पाकर भाग गया। दियासलाई जला कर उसने दरवाजा ढूँढ़ लिया। भीतर जाता कि बदबू—बदबू! जैसे कि कोई चीज सड़ गई हो। उसने दूसरी दियासलाई जलाई। एक टूटी चारपाई पड़ी थी। उसके

ऊपर गुदड़ा ओढ़े कोई लेटा हुआ था। बदबू के मारे, उबकाई आने लगी। साहस कर उसने तीसरी दियासलाई जलाई। फटे-पुराने चीथड़े से बनी रजाई उठा कर देखा—वही लड़की थी। कुरूप चेहरा, एक आँख फूट गई थी, नाक से पीब बह रही थी और शरीर पर फोड़े ही फोड़े थे।

वह सन्न रह, बाहर निकला। गली पार की। भागना चाहता था। कमजोरी की वजह धड़ाम से सड़क पर गिर पड़ा। तम्बोलिन की महफिल ने देखा। उसे उठा लाये। तम्बोलिन ने सेवा का भार स्वीकार किया। वह होश में आ गया। तम्बोलिन अचरज में बोली, "यह तो सुमत है। जेल से कब छूट कर आए ?"

"कौन सुमत ?" एक यार पूछ बैठा।

"वही, जिसकी चहेती को सिफलिस हुआ है। वह बेचारी सड़ रही है।" घृणा से मुँह बिचका, वह वीभत्स हँसी, हँसी।

उसका सुहाग

उसका विवाह हुआ था, उसका भी स्वामी था ; उसकी एक मात्र लालसा थी कि स्वामी के चरणों के समीप रह, अपना जीवन व्यतीत करदे। उसे चाहना थी उन सब सुखों को, जो एक युवती पाना चाहती है। लेकिन उसका जीवन इसके लिए नहीं बनाया गया था। स्वामी के समीप वह न पहुँच सकी। लालसाएँ अधमरी ही रह गयीं न उनमें उमगें थीं; न जीवन का एक भारी सुख। आशा की एक चिड़िया कभी जीवन-अंधकार में हलकी सुफेद रेखा बना, फिर ओझल हो जाती। वह उसी के सहारे उठ खड़ी होती, अन्यथा उसका जीवन कुछ न था। वह लोगों की सहानुभूति के अलावा, कभी-कभी अपने जीवन पर दृष्टि डाल अपने को अलग रखती—अलग ही। कुटुम्ब की हँसी-खुशी ले, घर के अज्ञेय कोने में दुबकी, जीवन का फैला हुआ भविष्य काट कर रही थी। जीवन के सारे व्यापार सारी अनुभूतियों को समेट लेने की फिक्र उसे न थी। अपना जीवन तोल कर पाती कि स्वामी एक विशाल-वृक्ष हैं। उसके बाद उसे पसरने की कहीं जगह नहीं, वह निर्जीव है। स्वामी मात्र एक ख्याल लगता कि………!

उसका अपना जीवन न था। दुःख की देन इतनी बाकी थी कि चुकाने में अपने को असमर्थ पाती। कभी तो वह अपने जीवन से भी घृणा करती, उकताकर सोचती कि वह कितनी अभागिनी है। भाग्य की कसौटी पर जैसे वह समूची परखी जाकर असफल गिनी गई हो। लगता एक लालसा है; शायद………………! नहीं वह धोखा लगता और एक कोरी कल्पना का आधार झूठा लगता। वह

सहारा उसकी उपेक्षा करता था। वह निपट अकेली थी। अपने में सीमित, अपने में रली, अपने में पली, अपनी एक ऐसी लकीर थी, जहाँ वही थी बस।

वह विधवा नहीं सधवा है। स्वामी कहाँ है, नहीं जानती। विवाह की घड़ी के बाद वह नजदीक न आया। दूर ही दूर हट गया। कहाँ चला गया, कोई जानता नहीं। क्यों चला गया, एक पहेली है। उसे क्यों जाना पड़ा यह सवाल हल न होता था। भारी असमर्थता लगती, कुछ वह सोचती -- उसे यह करने का क्या अधिकार था? वह उसे इस तरह क्यों छोड़ गया था? साथ लेते जाता--तब!

जवाब अपने में पाती। शायद ऐसा वह न कर सकता हो। उसे इतना वक्त न था। वह कुछ न कह सका, इसका दुःख? तो फिर वह दोषी क्यों ठहराया जाय। अपने कर्तव्य और सिद्धान्त की बाजी लगा कर उसने सोचा होगा कि क्या करना चाहिए। पत्नी को एक जीवन-विभूति गिन और कुछ भूख रही होगी, जो त्याग बन गयी। अपने ध्येय के लिए वह लाचार था। अपने पर वह क्या लागू करता, क्या नहीं।

उसके विवाहित जीवन का सुख, और उसकी लालसाएँ उसके जीवन के अरमानों को कुचलती हैं। वह एक विचित्र प्रवाह में बह जाती है। फाल्गुन की एक तिथि को जब उसकी बहन की शादी हुई, तब उसने न जाने कितने उत्साह से भाग लिया। जब मालती उससे विदा लेते समय रो उठी तब वह भी उससे लिपट कर इतनी रोई कि आँखें सूज गयीं। मालती चली गयी। घर पर एक चुप्पी छायी। उसी रात्रि को उसने देखा कि एक मोहिनी शक्ति उस पर से हट गयी—जो कि विवाह के तीन-चार दिनों तक उसे घेरे रही थी। उसे एक अजीब थकान सी लगी और मालती के सुहाग पर कुछ ईर्ष्या हो आई। उस रात्रि भर वह सो न सकी थी। मालती और उसके स्वामी के

बारे में न जाने क्या-क्या सोचती रह गई। अपने जीवन पर दृष्टि डाल रो उठी। अन्त में काफी विवेचना-व्यस्त हो, इस निर्णय पर पहुँची कि वह कितनी अभागिनी है। दर्प के आत्मभाव से मालती से सुहाग पर ईर्ष्या करती कितना गिर गई। अपना-अपना सुहाग है। इस पर सोचा ही क्यों जाय। यह तत्व उसे नहीं सुहाता। हृदय की अज्ञात पीड़ा ने उसे क्या बना दिया। वह कितनी उथली रही, वह कैसी भूल कर गई। ग्लानिवश वह रात्रि के शेष पहर, रो-रोकर अपने हृदय का भार उतारती रही।

मालती अपनी ससुराल में कुछ महीने रह कर लौट आई थी। उसने उसके स्वभाव में एक मनोवैज्ञानिक अन्तर पाया। वह पुरानी चंचलता न था, गंभीर बन गई थी। हँसती-बोलती कम थी। वह पुरानी स्वतंत्रता जैसे किसी ने हरली हो। मानों हल्के आवरण में छिपी वह हल्के मुसकराती हो। जब सखियाँ 'उनका' परिचय पूछतीं तो उसके कपोलों पर हल्की लाली दौड़ जाती है। वह अपनी और सहेलियों के साथ उतनी घुल-मिल कर नहीं रहती है, जितनी कि शंकुतला से। दोनों कमरे में बैठी न जाने क्या फुस-फुस लगाए रहती हैं। ठीक, शंकुतला का विवाह भी इसी मार्गशीर्ष में हुआ है। उन दोनों की एक ही उमंगें हैं। अपने-अपने स्वामियों की चर्चा करती होंगी। कभी-कभी तो उसकी उत्कण्ठा इतनी बढ़ जाती कि वह चुपचाप द्वार के समीप जा कान लगा सब कुछ सुन लेना चाहती थी। उनकी हँसी उसकी मर्मस्थली पर एक हल्का धक्का लगाती। लाज के मारे वह वहाँ अधिक खड़ी न रह सकने पर चुपचाप अपने कमरे में लौट, धप्प से बिस्तर पर लेट, घंटों रोया करती।

उस अज्ञात कोने के इस विषाद को कौन देखता। उसके भी 'वे' थे। बचपन में वह भी 'उनकी' मूक रचना करती थी। कल्पना-लोक में उसने न जाने कितने सुनहरे चित्रों के जाल से खेला होगा।

विवाह से कुछ महीने पहले उसकी भाभियाँ 'उनका' मजाकिया कार्टून बना कर उससे चुटकियाँ लेती थीं। आज वह उनके समीप नहीं। रोज की दिनचर्या में वह उनको नहीं पाती। अपने जीवन-दुःख में अपने को मिटाना ही उसे बाकी रह गया है। भाभियों की पुरानी ठठोलियों की याद आज बार-बार उभरे घाव को दुखाती है। आज अपने हृदय के दुःख को वह किसको सुनाए, किससे कुछ पूछे। इसीलिए चुपचाप अपने कमरे के खाली कोने में दुबकी मन के भीतर झाँका करती है।

वह मालती की एक-एक बात भाँपा करती। देखती वह एकान्त-प्रिय हो गई है। एक दिन उसने देखा, मालती के नाम एक खत आया। मालती उस दिन कुछ बदली दीख पड़ी। उसमें अपनत्व की छाप पाई। लगा, वह कुछ हृदय में दबाए हैं, आँखें नीचे किए ही चुपचाप कुछ कौर मुँह में डाल कर वह रसोई से जल्दी उठ, अपने कमरे में चली गई थी।

—उसी संध्या को वह मालती के कमरे में गई। वह पड़ोस में गई थी। कमरे में कोई न था। वह चुपचाप पत्र को ढूँढ़ने लगी। अंत में उसके हाथ लिफाफा लग गया। वह चुपचाप अपने कमरे में लौट, दरवाजे पर चटखनी चढ़ा, लैम्प की मन्दी मन्दी रोशनी में उसे पढ़ने लगी। उफ्, कितना बिखरा पत्र था। वह उत्तेजित हो पत्र में डूब गई।

सोचा—मालती का स्वामी। वह क्या लिख रहा है—'तुम्हारी याद करते-करते रास्ता न जाने कब कट गया...।'

क्या इसके 'वे' भी उसकी याद करते होंगे ?

हृदय पर गहरी ठेस लगी। वह तिलमिला उठी। आँखों में आँसू छलछलाए, आगे पढ़ने लगी—

'हृदयेश्वरी मालती...'

रुक पड़ी, स्तब्ध रह गई। पढ़ा फिर---

'बनारस हॉस्टल पहुँचते ही यार-दोस्तों ने घेर लिया। मिठाई खाने को तुले हैं। कोई पूछता है, यार मेम साहबा......

दूसरा---भाई भाभी ?

सचमुच गलती की। तुम साथ आने को तैयार थीं......'

वह चुप हो गई। एक गहरी साँस ली। सीढ़ियों पर किसी की आहट मिली। उसने पत्र बन्द कर लिया। चुपचाप दरवाजे के पास आई। दिल में उथल-पुथल मच गई, लेकिन सब भ्रम था। मालती नहीं आई थी। कई प्रश्न उठे।

क्या पत्र वहीं रख दूँ ?

नहीं, पूरा पढ़ना चाहिए। आगे न जाने क्या हो ?

यह मालती की चोरी......। पढ़ने लगी.........। पढ़ती रही......।

पत्र समाप्त हो गया था। वह दुबकी चुपचाप बाहर निकल, मालती के कमरे में उसे रख आई। लौट रही थी कि देखा मालती दरवाजे पर खड़ी उसे घूर रही है। उससे आँखें मिलाने का साहस न हुआ। वह मूकता से पूछती लगी, 'क्यों जीजी यह चोरी।'

उसे अपनी भूल ज्ञात हुई, जब कि मालती ने देरी के बचाव में कहा, "शकुन्तला अपनी ससुराल जा रही है" वह अपने डरे दिल को सम्हाल कर बोली, "मालती तू कुछ नई किताबें भी लाई है। आलमारी में तो सब पुरानी हैं।"

"लाई हूँ जीजी", मालती ने कहा। अपने सन्दूक से दो-तीन नई किताबें उसे दे दीं। वह पीछा छुड़ाती अपने कमरे में चुपचाप लौट आई।

---रात्रि को उसके हृदय में एक हूक उठी। वह अपने में तर्क

पेश करती कि मालती सुखी है। उसका जीवन ठीक है। मालती की किताबों पर किसी पुरुष की लेखनी से 'मालती' लिखा देख उसके हृदय में गुदगुदी उठी। वह एक नवीन तरंग थी, जिसका ज्ञान पहले-पहल आज हुआ था।

तब उसने अनुभव किया कि उसका भी एक स्वामी है, जो दूर होने पर भी इसी प्रकार उसके जीवन से खेल सकता था। लेकिन वह अपने को दोषी न मानेगी।

—उसका भी विवाह हुआ था। वह खेल न था। वह स्वामी की आड़ में बैठी थी। लोग साक्षी थे। संसार देख रहा था। कुछ पुलीस वाले आए थे। उन लाल पगड़ियों को वह खूब जानती थी। अक्सर सन्ध्या को घूमते वह देखती थी जेलवाली सड़क की ओर लोगों के पावों में बेड़ियों की झनझनाहट के साथ हाथ की हथकड़ी पर लम्बी रस्सी डाले वे अकड़-अकड़ के चलते थे।

एक ने बढ़कर उनका नाम पुकारा। न जाने क्या कागज पढ़ने को दिया। वे मुस्करा उठे। एक बार 'उसकी' ओर देखा था। उनकी विचित्र मुद्रा वह घूँघट की आड़ में भाँप गई थी। कभी उसे भूलती नहीं। तब वह भीतर न पैठ सकी थी। डरी, सहमी, अवाक, बेहोश हो गिर पड़ी थी। आँखें खुलीं तो देखा था, मोहल्ले की स्त्रियाँ उसे घेरे थीं। वे कुछ समझाती थीं।

फिर एक दिन सुना वे निर्वासित किये गए हैं। वह रो न सकी। सहरा कौन पास था कि आँसू बहाती। वह अकेली एक थी—अनजान, अपरिचित, अपने में समाई भर।

बस, कभी सोचती, क्या वही एक भारी काँटा इस विशाल साम्राज्य के लिए था? उन न्यायकर्त्ताओं को कुछ तो ख्याल करना लाजिम था। विवेचना करती सोचती, उनके भी कुटुम्बी होंगे,

युवती कन्याएँ होंगी, और पुत्र-बधुएँ ! नारी जाति की असहायता पर तो ध्यान देते। उनके लिए साम्राज्य के भीतर जगह न थी, तो उस अभागिनी को उनके साथ कर देते। नाजुक परिस्थितियों में पति-गृह सूना लगता, थकी पिता के घर वह जीवन काट रही थी।

एक दिन उसने उस 'एक मात्र मुद्रा' को समझ लेने की ठानी। वह साफ-साफ उस पर विचार कर एक राय कायम कर लेना चाहती थी, ताकि उपयुक्त अवसर पर उसी से अपना मन बुझाव कर दिल हल्का कर ले।

उसमें एक असमर्थता रही होगी, कान्ति मैं कितना अभागा हूँ। तुम्हारे लिए कुछ न जुटा सका। लाचार हूँ। यही हमारा इतना रिश्ता था। हम मिल गए थे। तुमको उसी भगवान् के समीप सौंपे जाता हूँ, जो मेरा इष्ट है।

एक बचाव की भावना होगी—क्या तुम भी मुझे दोषी गिनती हो ? मैं नीच नहीं, पापी नहीं, मैं क्रान्तिकारी हूँ। इस इतने बड़े साम्राज्य को कुचलने का दावा रखता हूँ। मेरा इतना घमंड कोई देख नहीं सकता। मेरा एक ध्येय था, एक धर्म, उसी को मैंने माना। अपने सिद्धान्त से बाहर मैं नहीं गया। मैं तुमको ठुकराना न चाहता था। पर क्या करता। परवश था। मुझ पर विश्वास करना कान्ति ! मैं सफल रहा। मेरा व्रत पूरा हुआ। और...

कुछ और—हमारा सफल जीवन है। अपने दुःख को समझ लेना आसान बात नहीं। कौन सुख में हँसता नहीं। दुःख एक निरी दिल्लगी नहीं है। अपने में विश्वास रखना। हम फिर मिलेंगे।

कई परिभाषाएँ निकालती। कई साल तक विचार करने पर कहीं उनको सुलझा पाई। अब सबको अपने पास हृदय में संवार कर रखती है। नाजुक घड़ी में उनको बिखेर, मन हल्का कर लेती है।

यही उसने पाकर अपने से लगाया है। कहीं भी अपने पति पर उठते प्रश्नों को वह चाव से सुन, जमा कर, गहरी अन्धकार रात्रि में अपना निर्णय देती है। सन्तोष पा, अपने में फूली नहीं समाती।

कभी वह सोचती, वे निर्वासित किए गए हैं। भारत से दूर न जाने कहाँ भटकते होंगे। पास में एक धेला भी नहीं होगा। भूख-प्यास लगती होगी। न जाने उस भूख की व्यथा को कैसे सह लेते होंगे। उसने एक दिन देखा था, भूख की भीषण ज्वाला में घिरा एक गरीब भिखारी नाली में गिरी दाल से अपनी क्षुधा बुझा रहा था।

वह चौंक उठी थी। यह भूख की परिभाषा थी। गरीबी का इतिहास था। कल्पना का एक दारुण चित्रण!

भला, उसी भूख की ज्वाला को वे कैसे सहते होंगे। इस पर वहाँ के लोग उङ्गलियाँ उठाते होंगे, वह देखो क्रान्तिकारी जा रहा है। वहाँ की सरकारें भी उनको चैन से न रहने देती होंगी। वे न जाने कहाँ होंगे। तो क्या क्रान्तिकारी होना पाप है?

वह इस प्रश्न पर अधिक विचार न कर, भगवान की अन्धाधुन्धी पर सोचती हुई, उस दिन पूजा न करती।

एक दिन उसने देखा कि मालती दिन भर न जाने क्या लिखती रही। वह उसे पढ़ना चाहती थी। इसे वह पाप नहीं गिनती। यह चोरी नहीं। जब कुछ पास नहीं, तो यह माँग ठीक थी। संध्या को मालती के कमरे में वह गई। मालती वहाँ न थी। बन्द लिफाफा 'राइटिंग पैड' के नीचे दबा था।

लिफाफा उसने टटोला। लगा कि वह उसे डस लेगा। डर गई, और कमरे में लौट आई।

उसका स्वामी ? वह किसे पत्र लिखे। उसे पढ़नेवाला कहाँ होगा। मालती का जीवन कितना सुखद है और उसका ! मालती का स्वामी।

नहीं, वह उसे बड़ा नहीं मान सकती है। वह उसे श्रेष्ठ कैसे गिन ले। मालती का स्वामी जीवन के कई पहलुओं से अनभिज्ञ है। वास्तविक समस्याओं को नहीं जानता है। यथार्थ की पकड़ नहीं पाता। जीवन के सम्पूर्ण तत्वों का ज्ञान उसे नहीं। वह प्रेम की ऊँची परिभाषा नहीं जानता। उसका स्वामी पूर्ण पंडित है। वह सब कुछ जानता है। उसका आदर्श जीवन है। जिस दिन वह पकड़ा गया, लोगों ने उपवास किया। अपना सगा सब उसे मानते हैं। कितने सहानुभूति-पत्र उसे नहीं मिले। मीटिंग हुई।

वह मालती से ज्यादा सुलझी है। यदि मालती अपने पति को पत्र लिख कर फूली नहीं समाती, तो वह उसकी अबोधता है। उसने अभी संसार कम देखा है ! उसका स्वामी ! वह उसे त्याग का एक ऐसा बाट दिखा गया है, जहाँ से वह लौट नहीं सकती है। वह अधिक विवेचना न करना चाहती थी। अपने त्याग में फूलना न जँचा।

यह था कान्ति का जीवन, जो सुहागिन हो कर वैधव्य का काला आँचल ओढ़े थी।

आज वह सुनती है, कि उसका स्वामी मर गया। समाचार-पत्रों में काले कॉलम में यह छप जाता है। वह इस पर विश्वास नहीं करती। वह अपना सुहाग बनाए रखेगी। कौन जाने यह झूठ हो। कभी पढ़ती है वह जीवित हैं। सुन-सुन कर थक गई। वह महत्व की बात नहीं वह अपनी सोई लालसाओं को नहीं जगावेगी।

—उस दिन मालती का स्वामी आया। सरकारी वजीफा पाकर अमेरिका पढ़ने जायगा। लौट कर किसी अच्छे ओहदे पर नियुक्त

होगा। मालती से बिदा लेने आया था। मालती उस दिन अनमनी लगती थी। बात-बात पर गुस्सा होती। वह भी तो उद्विग्न हो उठी थी।

उस रात्रि को उसने सोचा, मालती का स्वामी विदेश जा रहा है। दो-तीन साल में लौट आयेगा। उसका स्वामी……! कौन जाने, आवे न आवे। वह अपनी व्यथा किससे कहे। अपने अभाव के लिए रोने की लालसा रख कर भी वह रो न सकी। एक बार उसका हृदय फिर न जाने क्यों उद्वेलित हो उठा। वह अपने को शान्त न कर सकी। हृदय में विचित्र तूफान उठा। एक मोहिनी किसी ने उस पर फेरदी। वह उसी में रम गयी। आवेग को रोक न सकी। उसने गुन-गुनाहट सुनी। मालती अपने स्वामी से न जाने क्या-क्या कह रही होगी। लोभ न संवार सकी। आगे बढ़ चुपचाप दरवाजे पर कान लगा सुनने लगी।

सुना उसने :

"दुर, तू पगली है। इतनी सी बात पर यह दुःख…अपनी जीजी को देख, वह देवी है।"

मालती सिसक रही थी।

उसका दिल अभिमान से भर गया। गर्व से छाती ताने वह चुपचाप अपने कमरे में लौट आई। आत्मश्लाघा में अपनी मखौल उड़ाने लगी—'मैं देवी हूँ'

चुप्पी।

हूँ।

बस, इसी से संतोष पा गई। आज उसे पहले-पहल जीवन में चैन पड़ा। अपनी श्रेष्ठता पता लगी। वह खूब गहरी नींद सोई।

मालती का स्वामी चला गया। उसका परिवर्तन देख कर वह

सिहर उठी। उसे खूब समझाना चाहती थी। असमर्थ पा मन-मार कर चुप रह जाती थी। मालती का स्वभाव धीरे-धीरे बदलता गया। उसमें अब साख्य भाव आ गया था। अब जीजी से वह कुछ न छिपाती थी। घंटों उसकी गोदी में सिर रख कर रोया करती थी। तीन महीने तक जब स्वामी का पत्र न मिला, तब उपेक्षापूर्वक बोली, देखो न जीजी, झूठा वादा कर गए। एक चिट्ठी न लिखी गई।

उसके हृदय का घाव बह गया। मीठा-मीठा दरद शुरू हुआ।

वह मालती की बातें सुन कर हँस देती! उसके हृदय की थाह पा जाती।

—एक दिन उसने देखा, डाकिया उसके घर के पास रुक पड़ा। मालती उस समय नहा रही थी। उसने पत्र ले लिया। उतावली हो उठी। अपने कमरे में जाकर पढ़ने का लोभ न संवार सकी। एक नई शक्ति हाथों में आई। दबे हाथ उसने पत्र खोला।

न जाने क्या-क्या लिखा था।

एक लम्बी वियोग-गाथा······।

वह पढ़ते-पढ़ते चौंक उठी। जोर-जोर से पढ़ने लगी।

'मालती एक अनहोनी बात भी लिख दूँ। मैं जीवन से हाथ धो बैठा था। लापरवाही से डबल-निमोनिया हुआ। सोचा, अब जीवन निपट गया। तुम्हारी याद आती थी······। एक अज्ञात युवक ने रात-दिन सेवा कर मुझे जिलाया। वह भारत का रहनेवाला था। बड़ा सुन्दर था, संयमी था और दृढ़ विश्वासी था। उसका प्रभाव मुझ पर पड़ा। उसका जीवन एक पहेली था। मेरे जीवन का मूल्य उसने चुकाया। मेरे प्रति रोज ध्यान देता। अपने को लापरवाही से उसने खो दिया। मुझे जिला कर वह खुद बीमार पड़ गया। डॉक्टर उसे न बचा सके। उनका मत था अधिक परिश्रम

खाने की बुरी व्यवस्था और जीवन के संघर्ष की वजह से वह इतना कमजोर हो गया था कि इतने दिनों उसका जीवित रहना एक आश्चर्य लगा। वह भूला नहीं जाता।

मालती यह भी लिखना है। कर्तव्य के आगे क्या करूँ ? कैसे लिखूँ ? हमने उसकी पुरानी डायरियाँ पढ़ीं। उसका परिचय मिल गया। वह तुम्हारी जीजी का स्वामी था।

—वह सन्न रह गई ! आज उसके जीवन पर एक काला परदा पड़ गया था। किसकी उम्मेद अब उसे थी। कौन अब लौट आवेगा ?

वह रोने की इच्छा रख कर भी रो न सकी। दुःख की अगाध छाया ने घेर लिया। उसका हृदय भर आया। आज प्रतीक्षा का भार उतर गया था।

उसने चिट्ठी टुकड़े-टुकड़े कर फाड़ डाली। अपने सुहाग को उतार कर वैधव्य का मलिन परिधान ओढ़ लिया।

मालती उस दिन पूर्णिमा के उपलक्ष में माथे पर लाल टीका लगाये उसके पास आयी। और वह रो रही थी।

छार्की के कुछ दिन

कैलेंडर का तीसरा पन्ना चमक रहा था तारीख याद नहीं। आज वह दिन धुँधला पिछली घटनाओं में खो गया। फिर अनायास कुछ बातें उभर आती हैं :

एक बड़ा कमरा। चौड़ी-चौड़ी मेजें—लगी। उन पर ब्ल्यू-ब्लैक रंग की चादर बिछी। वहाँ फैले कागज कंकड़ों से दबे। उस वातावरण में किसानों, जमींदारों, काश्तकारों अर्थात् देहात कहलाने वाले हिस्से के भविष्य के बड़े-बड़े विवरण और नकशे का फैसला होता था। गुलाबी फीते बँधे पेड, जिनमें लगान की नई लिस्टें सँवार कर धरी हुई थीं।

बरसात के दिन। दोपहर को अँधियारा हो आया। बिजली के बल्बों की रोशनी फैली हुई। कमरा अस्तित्वहीन भले ही लगे, पर वहाँ बड़ी तादाद में कुछ लोग बैठे हुए हैं। सबके चेहरे मुरझाये। उनके आगे, पूँजीवाद का दानव फीका, कोठर हँसी हँसता, सुझाता—'ओ' छार्की !

दिमाग थक जाता है। मन काम पर नहीं लगता। कागज पर लिखे नम्बरों के बड़े जोड़ में अपने को खोकर भी विद्रोह उठता है। वह गिनती है, जिससे भारी थकान लगती है। उस संख्या का जोड़ लगान के रूप में वसूल होता है। जो सही नहीं। नहीं, काले कानवेस पर सुफेद चौक से कोई रेखाएँ खींचता है। लिखता—यह सब धोखा है। नौकरी करने वाले बाबू लोग, गाँवों में काम करने वाले किसानों को डुबो रहे हैं। ये सब नकशे गलत हैं। उनमें शहर

के डूबते दरजों की बू है। उनमें देहातियों का सहयोग नहीं है। व्यर्थ है कानून का यह रूप! पर यह सब उन पर लागू होगा।

यह अपनी बात नहीं। कुछ भूली घटनाओं का जाला है। जिसे समय रूपी-मकड़ी ने अवसर पाकर बुना था। वहीं तब अवसर-वादों का तरह, परिस्थितियों के बीच फैली घृणा को क्या कोई भूल सका है! तो यह लिखी लाइनें उपहास नहीं, घटना है—घटना, टूटी-फूटी दुनिया के रोजाना इतिहास में बिलकुल महत्वहीन!

'टिप-टिप-टिप!' वस्तुत्वहीन 'कारबन' लगे कागजों पर वही 'टाइप' की टिप-टिप-टिप! वह निरस आवाज सारी भावुकता को सोख लेता है। उस पर 'ड्राफ्ट' बनते हैं और उस पर अकसर अक्षर मुसकाते हैं। और फिर वही टिप-टिप-टिप! वह टाइप की काली मशीन—घोर काले रंग में पुती। घनी निराशा जैसे कि एक अरसे से उसने पचाई हो। एक दिन व्यक्ति का अस्तित्व मिट जावेगा, वह फिर भी करेगी टिप-टिप-टिप! यह मनुष्य और मशीन का सकारण भेद मिटेगा नहीं। ऑफिस के आदान-प्रदान में वह रोज नये-नये खेल खेलती है।

सुबोध टाइपिस्ट है। अक्सर लोगों के साथ सिगरेट फूँकता है। हर एक से दोस्ती है, उसका चटपटा मजाक सबके मुरझाए चेहरों पर जीवन ले आता है। वह उस वातावरण में बार-बार जान-फूँकने की चेष्टा करता है। वह वातावरण के भीतर फैली चीजें भी अजीब लगती हैं। 'इंक-स्टैंड' पर ब्ल्यू और लाल रोशनाई की दवातें रहती हैं, ब्ल्यू वाला कोई मनचला घर उड़ाकर ले गया है। मोटे-मोटे होल्डर तो वैसे ही पड़े हैं। बात अटक जाती है। रबड़ भी है। रबड़ कागज पर लिखे अक्षर मिटा सकता है, आर्थिक दासता में कुचले पड़े काले धब्बों को नहीं। वह आखिरी दिन भी इतिहास की लाल रोशनाई में साफ पढ़ा जा सकेगा।

क्लार्क एक छोटी जाति है और अफसर बड़ी ; दोनों की रोजी में भारी अन्तर है। एक चालीस रुपए माहवार का हकदार है, दूसरा एक हजार का। यह एक सामाजिक डकैती है !

वहाँ कुछ रूखा है। वह खुरखुरा भी लगता है। वह रूखा भाग्य होगा, जिसे भगवान ने दुनिया में बाँटते समय कुछ को कंजूसी से दिया। लेकिन नास्तिक का क्या हो ! वह जिसका भगवान, कागजों, फाइलों पैडों में छुपकर रहता है। वह जिसका विधाता अफसरों की खुशामद और चापलूसी करने उसे अकेला छोड़ जाता है। वह जिसका भाग्य अफसरों की लिखी 'रिपोर्ट' पर निर्भर रहता है ; और जरा-जरा छोटी गलतियों पर जिससे जवाब-तलबी की जाती है। वह आजीवन एक ऐसा सीमा के भीतर रहता है, जिसके बाहर मोटे अक्षरोंमें लिखा मिलेगा —क्लार्क !

आलपिन और टैगों से उलझे कागज, फाइलों का रूप ले लेते हैं। आज का दिन कट जाने पर भी 'कल' बन जाता है। लेकिन कलम एक बारगी रुक जाता है। जिस दिन सुना था नौकरी मिलेगी, कोई खास खुशी नहीं हुई। अपने गिने-चुने मित्रों को छोड़ने का दुःख था। तब जीवन चलाऊ लगता था। पैसों की परवाह नहीं थी न। जिन्दगी को जुए की तरह खेल, कौड़ियाँ फेंकने वाला दाँव सीखा था। तब अक्सर दिन भर ब्रिज खेलकर मस्त रहते थे। अब रहती जिन्दगी ४०-२ ६० के ग्रेड की पटिया पर बढ़ रही है। यदि बीच में मौत आ जावे, तो 'सरविस-बुक' और 'कैरक्टर रौल' दफ्तर के मालिकखाने में दीमकों को चाटने के लिए फेंक दी जावेंगी।

मन न जाने क्यों ऊब जाता है। ऑफिस से लगा एक बाग है। वहीं आम की टहनी पकड़े कुछ सोचता हूँ। कभी देखता हूँ कि एक खास मौसम में वह बाग सींचा जा रहा है। तभी अपने जीवन में भी हरियाली की उम्मेद होती है। पास ही एक ऊँचा बड़ का पेड़ है,

उस पर मधु-मक्खियों ने छत्ता बना लिया है। वह अपनी मेहनत का फल पूरा-पूरा पाता है।

तब इन बातों को सोचना व्यर्थ है। बाग का जीवन और अपना ? घड़ी की सुई संध्या को सात से आगे बढ़ गई है। सिर झुका कर काम पर जुट जाता हूँ। कुछ मन में उचाट है। सब साथी काम पर लगे हैं। उनके बीच-बीच सुनता हूँ—बंशी पानी पिलाना !

बंशी पानी वाला है। वह सबको पानी पिलाता है। दिमाग तर करने के लिए वह एक आने में शरबत पिलाता है। कुछ नशेबाज दोस्त भंग भी पीते हैं।

मनो आकर बोला, 'चलो भी यार। काम करके कोई मरना थोड़े हैं।'

'यह 'स्टेटमेन्ट' निपटा लूँ।'

मनो खड़ा ही है। वह आजाद तबीयत का लड़का है। कॉलेज के दिनों से उसे जानता हूं। बस 'स्टेटमेन्ट' को कंकड से दबा कर उसके साथ बाहर निकल आया।

मनी ने जेब पर से 'पासिंग शो' की दो सिगरेट निकालीं। फूँकते हुए पूछा मैंने, 'यार क्या रात यहीं काटनी पड़ेगी ?'

शायद ! कारण कि हमारी कमजोरी है कि हम दब जाते हैं। हम में हिम्मत नहीं है।'

'हिम्मत मनो !'

'अफसरान जानते हैं, यह 'टेम्परेरी डिपार्टमेंट' है। इसीलिए सब धौंस गाँठते है।'

'इसका इलाज तो निकालना ही पड़ेगा। हेडक्लार्क का अलग कानून चलता है। पिछले चार इतवार छुट्टी नहीं मिली। कल का भी बन्द !'

'ये जानते हैं कि हमने चन्द पैसों के लिए अपने को बेच दिया है। फिर पढ़े लिखे मजदूर अपनी बाबू गिरी करने में रह जाते हैं।

उनका नैतिक-पतन हो जाता है। साधारण मजदूरों वाली शक्ति तक उनमें बाकी नहीं रहती।'

तभी श्यामसुन्दर पास आ पहुँचा। उदासी में बोला, 'यह तो नया रवैया चल पड़ा है। छोटे बाबू खुले खजाने गाली देते हैं।'

'सुधार कैसे हो ?' मैंने पूछा।

श्यामसुन्दर दो बच्चों का बाप है। पच्चीस रुपल्ली तनख्वाह पर काम करता है। बोला, 'मैं तो भिड़ने के लिए तैयार हूँ पर आप लोग ?'

मैंने कहा, 'कल एक छोटी सी बात पर तो आदिल की रिपोर्ट कर दी गई है। साहब ने उसे बरखास्त कर दिया है।'

'यह हमारे अधिकारों का खून है ?' मनी तेजी से बोला।

कल की घटना :

इसी तरह रात के सात बज रहे थे। आदिल ने बड़े बाबू से छुट्टी माँगी। घर पर कोई जरूरी काम था। और लोगों ने भी कहा कि सुबह नौ बजे से काम कर रहे हैं।

छोटे बाबू का पारा कुछ गरम था। बोले, 'आप लोग ईमानदारी से काम नहीं करते। दिन भर खेला करते हैं। रात भर काम होगा।'

'तो हम बेइमानी करते हैं !' आदिल बोला।

'देखिये, जो काम नहीं करना चाहते हों वह इस्तीफा दे दें। हमारे पास हजारों दरख्वास्तें पड़ी हैं। आप चौबीस घंटे के नौकर हैं। यह बन्दोबस्त का दफ्तर है, सिक्रेटेरियट नहीं।'

भला बी० ए० पास आदिल यह सह सकता था ! गुस्से में बोला, 'मैं हेडक्लार्क से बातें करने आया हूँ।'

इतनी तौहीनी छोटे बाबू न सह सके। मेज पर दोनों हाथ पटक कर बोले, 'अपनी सीटों पर जाकर बैठो।'

'आप जो चाहें करलें,' आदिल भी बोला।

—और आज सुबह आदिल 'आफिस' पहुँचा। अपनी सीट पर बैठ भ नी पाया था कि छोटे बाबू बोले, इनचार्ज' आदिल साहब से काम ले लिया जाय। साहब ने उसे 'सस्पेंड' कर दिया है।'

तभी हमने जाना था कि बड़े साहब 'विधाता' से भी कड़ी लकीर खींच सकने की क्षमता रखते हैं।

लेकिन चपरासी आकर बोला, 'आप सब को बड़े बाबू बुला रहे हैं।'

सीढ़ियों से कमरे में जा रहे थे कि छोटे बाबू और लोगों से कह रहे थे, 'इन लोगों ने आफिस को भी 'कालेज' ही समझ लिया है। इस तरह के दिमाग को लेकर नौकरी नहीं होती। सब अपने को लाट साहब समझे बैठे हैं।'

सब चुपचाप सुना। जो शक्ति आदिल को मिटाने तुली, उस पर विचार करना पड़ेगा।

—आठ बज रहे हैं। आदिल की कुरसी खाली पड़ी है। सारा वातावरण फीका लगता है। वक्त बार-बार निगलने की चेष्टा कर रहा था। अपने में निम्नता होती है। किसी खास बात का उत्साह नहीं है। सुबह 'धाबा' में खाना खाया था। आफिस की देर न हो जाय, पूरा खाना नहीं खा सका। ख्याल आता, हमारा अस्तित्व कुछ नहीं। हमारी मेहनत की मजदूरी बहुत सस्ती है। हमारा भविष्य आदिल की तरह है। हमारे ऊपर एक गलत शासन है, जिसमें हमारी आवाज को कुचलने के पूरे साधन हैं।

साधारण मजदूर भी विद्रोह करता है। लेकिन हम तो कोट-पैंटवाले बाबू हैं। हम अपने को मजदूर नहीं मानते। हम मुन्शी मिस्टर हैं, बाबू हैं! राह में चलते मजदूर के प्रति उदासीन रहा करते हैं। यह हमारी महानता है। हम अलग-अलग दरजों में

समाज को बाँटने के पक्षपाती हैं। हमारी बाबूगिरी वाला दरजा कितना ही खोखला हो, उसको मजदूरों में मिलाने में फिर भी न जाने हमें क्यों हिचक है।

आदिल और मनी नौकरी करते हैं। नौकरी से पैसे मिलते हैं और तभी जीवन का रोजगार चालू होता है। यह पैसा व्यक्तित्व ढक लेने की क्षमता रखता है। इसीलिए... ... ...

सामने पड़ा 'स्टेटमेन्ट'! उसी के बल पर तमाम लगान, छूट, और माफी की समस्या सुलझती है।

और वह छोटे बाबू की आवाज 'मुन्शी... ...कितना काम बाकी है?'

'मिस्टर...सुबह आठ बजे साहब के बँगले पर आना।'

'इनचार्ज, साहब वाला पैड तैयार है?'

बड़े बाबू भाग्य पर विश्वास करने वाले जीव हैं। निचले ओंठ आध-इंच मोटे हमेशा पान से तर रहते हैं। और यदि कोई बाबू उनके घर पहुँच बच्चों को मिठाई खिला आते हैं या सौदा-सुलफा दे आते हैं, तो उस पर उनकी खास मेहरबान समझिये।

आखिर आफिस बन्द हो गया। नौ बज गये हैं। मनी और मैं साइकिल पर पैडिल मारते घर की ओर रवाना हो गये। राह में मनी बोला, 'धाबा तो अब बन्द हो गया होगा।'

'हाँ।'

'फिर... ...?'

'डबल रोटी सुबह की बची है।'

'हमारे घर न चले चल।'

—अगले दिन सुबह मैं और मनी डिपुटी-साहब के पास गये थे। साहब बोले, 'डिसिप्लिन आखिर डिसिप्लिन है। उसके लिए सारा आफिस निकाला जा सकता है।'

'लेकिन सही बात !'

'...गोली चल पड़ी। बड़े साहब ने आदिल को निकाल दिया है। अब आप लोगों की नींद टूटी। अंग्रेज डिसिप्लिन का बहुत ख्याल करता है।'

'हम लोग !'

'कोई सुनवाई नहीं होगी। देखिये जिस 'नेशन' की ठीक इतिहास नहीं, उसका चरित्र नहीं होता है। आप लोग गरम खून वाले हैं। ठंढे होकर बातें किया कीजिये।'

'मैं यह नहीं मानता।' मनी बोला।

और डिपुटी साहब हँस पड़े। कहा, 'सुनिये जब मैं नायब तहसीलदार था, तब कलक्टर साहब के लिए एक बार मुझे अंडों का इन्तजाम करना पड़ा। मैं बनिया हूँ अंडे नहीं छूता। पर लाचारी थी। इस पर मेम बोलती थी—नायब सड़े अंडे लाया है।'

बड़ी बहस के बाद भी कुछ हुआ नहीं। आखिर चुपचाप लौट ही आये।

—आदिल, मनी और श्यामसुन्दर या कोई क्लार्की को आप सा स्वीकार फिर भी करते हैं। क्लार्कों की एक बड़ी जाति समाज में है, जिसका अस्तित्व शहर के डूबते हुए मध्यवर्गीय दरजे के बीच कभी-कभी चमक उठता है।

अचला

'इतना ऐश्वर्य', अचला अपने में गुनगुनाई। यह जानकर उसे भारी दुःख हुआ। समझ पाई कि भूल और गलती का बचाव न करना, अपने को पहचान से अलग हटाए रहना और······। अब उसे लगा कि कमरे के बीच वह अकेली और असहाय खड़ी है। आज तक की अपनी लापरवाई के प्रति अविश्वास कर वह थाह पा गई, कहीं गलती जरूर थी। दिल में एक कमी महसूस होती, अज्ञेय की ढूँढ़ कैसे हो? फिर······पाश्चात्य ढङ्ग पर सजा कमरा, दरवाजे पर सुन्दर इम्ब्रोडरी के पड़े परदे, बीच में प्रशियन दरी बिछी, दिवालों पर टंगे प्राकृतिक दृश्यों के चित्र व बनी खालें और नीली साड़ी पर ओवरकोट पहिने आखिर अपने को कहाँ ले जाने तुली है। क्या एक-एक दिन जीवन का फिजूल काट, कभी अपने से सवाल पूछेगी—अचला तू क्या है? तू क्या यही चाहती थी? यही तेरा धर्म था। इसी के लिए तूने जन्म लिया; तेरी चाहना और तृष्णा···?

वह जानती थी कि उसका सामाजिक दायरा अलग है। हर एक के साथ उसे चलना नहीं है। वह छोटी-छोटी पार्टियों से सम्बन्ध न रखेगी। कुछ गिने चुने लोगों के बीच रह वहीं चबा-चबा कर बातें करते, एक फिजूल वक्त भद्र-श्रेणी वालों की पार्टियों; आई० सी० यस०, पी० सी० यस० के क्लबों; ब्रिज और पिकनिक में कट जाता है। इनसे वास्ता रख, अपने पर सोच लेने को उसे मौका नहीं मिलता। दिन भर कई प्रोग्रामों के बाद जब वह अपने बङ्गले लौटती है, तब इतनी थकी आती है कि चैन से गहरी नींद सो, दुनिया की बातों पर सोच लेने को उसे फुर्सत नहीं। अपनी स्वतन्त्रता पर वह खुश है। पिता नहीं, माँ नहीं और एक बड़ी दौलत की

स्वामिन बनी, अपने पिता के बनाये मान-सम्मान के बीच बाहर झाँक लेने का उसे मौका नहीं मिलता। घर की बूढ़ी नौकरानियों के पुराने अधिकारों को मान्य मान, वह उनकी देख-रेख और पालन करना अपना कर्तव्य गिनती है।

अचला के जीवन में दुःखान्त की भावना उदित न हुई थी। यह उसने न सोचा था कि एक दिन वह अपने को धोखा देगी। यह अब देर से समझी कि उसका जीवन परिवर्तन चाहता है। 'क्या' वह नहीं जानी, समझी। इतना निश्चित कर पाई कि जहाँ एक दिन खुद गलती पकड़ेगी, वहीं अपने को पकड़ कर ठीक कर लेगी।

अचला के दिल में बैठा डर उसे डराने लगा। डर कर उसने मुलायम तकिए को छाती से लगा, आँखें मूँद लीं। अपने को निपट अन्धकार के बीच सौंप कर वह कुछ टटोल लेना चाहती थी। बड़ी देर उस अन्धकार में कुछ रेखाएँ खींच, सही राह बनाना चाहती थी। अपने को असमर्थ पा, दुःख होता। यह बात जान फिर मन भारी करती। मर्मान्तक पीड़ा में तिलमिला, खूब गहरी साँसों के बीच, अपनी भीगी पलकों को खोल कर उसने पुकारा, "शारदा।"

नौकरानी आई, बोली, "क्या है बीबी?"

"तू दिनेश को जानती है!"

नौकरानी ने अचला को देखा, कुछ नहीं बोली।

"वही! जो उस दिन आया था!"

नौकरानी ने फिर अचला को देखा! बचपन से पालकर जिसे इतना बड़ा किया, उसे मूकता से सुझाना चाहती थी—उसे अब कुछ याद नहीं रहता। वह बहुत बूढ़ी हो गई है।

अचला ने चुपचाप रजाई ओढ़ली। कमरे में ई० डी० क्लोन और इकलिप्टिस की महक बह रही थी। इसी में वह अपने दिल के

जगे दुःख को सुला रही थी। उफ! अचला ने करवट बदली; गहरी साँस ली। उसको जीवन में क्या 'यही' देखना था। आज उसकी परेशानियाँ, परेशानियों की तरह उसे छेड़ती क्यों उस पर अधिकार कर रही थीं। कुछ हो, वह भूल क्यों नहीं जाती सब कुछ—सारा व्यापार, सारी दुनिया और रोज की दुनियादारी को भी। दिनेश से उसे अब कोई वास्ता नहीं है। वह अपने को कमजोर साबित कर क्या नारी अभिमान को मिटा देगी—यही न कि वह भी स्त्री है। उसकी भावनाएँ, विचार एक साधारण स्त्री की तरह हैं। वह भी उन्हीं तत्वों की बनी है, जो स्त्री का सहारा है, बल है। एक ओट, एक सहारे की चाह उसे तो है नहीं। स्वामी और पत्नी की गहरी अनुभूति उभर कर उसे अब अपने में कहीं खींच, समेट न ले। 'प्रेम' वह नहीं मानती। वह उपेक्षा उसे लगता है! श्रद्धा वह मान लेने के लिए तैयार है। उसकी वह भूखी है। उसकी हँसी उड़े, लोग मजाक करें, संसार अवहेलना कर ठुकरा दे वह⋯⋯किन्तु⋯? वह डरेगी नहीं। उसका भी दिल है। वह बात समझ लेने वाली ताकत रखती है। उसके दिल में नारी-आग सुलगती है।

आज अचला ने अपना घमंड बिसार दिया, वह जरा सी बात, घटना, उस पर गहरा प्रभाव छोड़ गई। मि० माथुर से वह क्या चाहती है। हाँ मि० माथुर सिविल सर्जन और उनका मान कुछ उसका मान थोड़े ही है। फिर भी मि० माथुर के प्रति उसका एक कर्तव्य है। वह उसे भले लगते हैं। वह एक ऐसा आदमी है, जो उसके दिल में गुदगुदी पैदा कर, समस्या गढ़ चला जाता है। उसकी बात मान लेने को तैयार रहता है। कभी उसने अचला के नारी-हुकम को नहीं टाला, उसका फुर्सत दुनिया की अपेक्षा लिए हो, अचला का वह हर वक्त साथ देता है।

इस मनबुझाव से भी अचला अपने को सान्त्वना न दे सकी। जो बात मन में उठी, वह उठती जाती थी। वह अपने को न पकड़

पाता। उसकी सारी सामर्थ्य चूकती लगी। सिर में दर्द था। मन में भारी उचाट। वह अलसाई एक ओर चुपके निश्चिन्त सो जाना चाहती थी कि उसका दिमाग बिलकुल खाली रहे। वह खालीपन शायद उसकी पीड़ा को कम करेगा। अपने को दुनिया से नीची सतह पर गिन लेना वह न चाहती थी। यह जरूरत ठीक जंची। इस छोटी उपेक्षा के प्रति मन को बाँध लेना उचित जान पड़ा। वह क्यों दुनिया भर की जिम्मेदारी लेले। जहाँ वह है, उससे बाहर न जावेगी।

वह दिनेश की मूर्त्ति 'लेकिन' बनी मन में गाँठ बाँधे थी। दिनेश २७-२८ साल का दुबला-पतला युवक, चेहरे पर श्रेय तेज, बड़े-बड़े बिना संवारे रूखे बाल, गोरे रङ्ग पर हल्की-पीली पड़ती झाइयाँ; पट्टू का कोट, मोटी खादी की धोती।

दिनेश क्या चाहता था उससे! लगा आज वही दिनेश पास आ कहता—अचला अभी भी वक्त है। हैं तुम अलसाई, सुस्त सी क्यों लग रही हो। चुपचाप आराम से लेटी रहो। यह आराम तुम्हारे लिए ही है, मुझे बंधन नहीं चाहिये, फिर भी……।

क्यों खयाली दिनेश उसे अपने में रख लेने की फिक्र में है। यह हक अब दिनेश की अनजानी पुकार क्यों लगती है, या वह बात गड़ रही है। अपना राजेन्द्र की परेशानी में उलझती जाती है।

किन्तु दिनेश राष्ट्र को अपना कर्तव्य समझ कर अचला को क्यों कुचल गया। अपने को देश के सवाल में हल कर, क्या वह अचला को नीचा साबित करना चाहता था। राष्ट्र, देश, बलिदान, त्याग के जाल के बीच वह अचला को क्या सुझाने आया था। अचला के घमण्ड को चूर करने का क्या यह एक हथियार था। उसी दिनेश ने एक दिन आकर कहा था, "अचला, आज तक वक्त नहीं मिला। आज आया हूँ तुम्हारे पास। जानती हो क्यों? एक दिन एकाएक आकर इस तरह खड़ा हूँगा, कभी सोचा था तुमने?"

वक्त का बहाना, उसकी मजाक उड़ानी अनुचित लगी। भला पुरुष ने यही सीखा है। वह बोली थी, "तुम्हारे समय की बचत की मुझे परवा नहीं।"

रूखे स्वर में वह कहता रहा, "ठीक कहती हो तुम। आज भी जरूरी काम से आया हूँ। अपनी आत्मा को कुचल कर तुम्हारे आगे कुछ कह लेने खड़ा हूँ। अपना कुछ अधिकार समझ यह कहता हूँ। शहर में तुम्हारी चर्चा के प्रति उदासीन न रह सका। भारतीय नारी की वह लज्जा तुमने कहाँ त्याग दी। यह तुम्हारी शिक्षा न थी। तुम्हारे क्या-क्या अरमान थे, जानती हो···?"

"यही कहने आप आए हैं", अचला ने तपाक से बात काटी—"मैं कुछ और ही सोचती थी। मैं अपना कर्तव्य और उत्तरदायित्व समझती-जानती हूँ। कौन आज मुझे नहीं चाहता। मेरी दौलत, मेरी शान, मेरी इज्जत की वजह से कौन ऐसा है जो प्रेम की भीख माँग, विवाह का प्रस्ताव नहीं करता है। सारा युवक-समुदाय भिखारी है······, भीख···! ठीक व्यक्ति वे नहीं। मैं पहचान जानती हूँ। दुनिया फुस-फुस करती मुझे खेल बना लेना चाहती है। इस दुनिया को आप आज न पहचान सकेंगे। मुझे खुद खेल खेलना है। आप अपना कीमती वक्त बचा कर आये, शुक्रिया···! अचला वह पुरानी नहीं, आज तो अब···।" अचला हंस पड़ी थी। चुप रही।

"अचला" कहते दिनेश ने एक बार आँखें ऊपर उठाई थीं। "याद नहीं है वह दिन जब हम छोटे थे। वही जब हम साथ-साथ खेलते थे। जिस दिन मैं इङ्गलैंड पढ़ने गया था, तुम कितनी रोई थीं। लौटकर मैं अपनी भूल की अवहेलना नहीं सह सका, और आज······?"

"न बहलाओ मुझे, उन बातों की याद दिला कर। तब एक दूसरे को ठीक पहचानते थे। आज, जानती हूँ मैं पुरुष स्वार्थ को। अपने को ऊँची सतह पर खड़े कर लेने को वह क्या-क्या रङ्ग नहीं बदलता

है। आपका मालाओं से भरा गला जब अखबारों के फोटो में देखा, बड़ी हँसी आई थी मुझे। आप भी दुनिया को ठग लेने यह कर सकते हैं, विश्वास न आया था। खैर'''। गलत में ही सही, आप सही चलें ''...''

"अचला," कह दिनेश रुक पड़ा। आगे क्या कहे उसे कुछ सूझा नहीं।

"और पिता एक दिन जो कह गए थे, वह आज हम पर लागू होगा, यह खयाल भुला देना। उन दिनों पिताजी ने खुद आपको ठीक नहीं पहचाना था।"

"मुझे यह चाहना नहीं है अचला", कह दिनेश ने एक बार अचला की आँखों में अपनी आँखें डुबोते कहा। "सिर्फ तुम गृहस्थी में रहो—कहीं, जहाँ ठीक लगे।"

"अच्छा तमाशा होगा यह", अचला ने बात काटी थी।

—दिनेश चला गया था। वह बहुत अनमनी और उदास थी। दिल उचाट था। तब ही मि० माथुर ने आकर, उसका नारी अनुभूतियों को जगाते कहा था. "हल्लो मिस अचला, आप थकी सी लगती हैं।"

अचला चुप रही थी। कुछ देर बाद जवाब दिया था, "हाँ डाक्टर आज सुबह से सिर-दर्द है।"

मि० माथुर ने अपने हाथ से उसका माथा छू लिया था। तब ही अचला ने आँखें मूँदे सोचा था, यह कितना सभ्य आदमी है। नारी को पहचानता है।

—आज वह दिनेश के प्रति क्या सोचे, निश्चित कर लेना चाहती है। जब वह दूर है, अलग है, फिर क्यों जाल बिछाकर उलझे। इस दुनिया में फिक्र और तवालत को मोल ले लेना आसान काम है। जो

जरा बातों पर अटका, हार गया। जिन्दगी निरा गुड्डे-गुड्डी का खेल भी तो नहीं। वह दिनेश की खयाली मूर्ति गढ़, उस के आगे खड़ी हो, अपने अभिमान को जगाकर क्या चाहता है ? अपने तेज का उपयोग। वह और दिनेश ?

मि० माथुर उसकी सब बातें रख लेते हैं। कुछ, किसी बात पर, कहीं मना नहीं करते। उसकी जरूरतें जानते हैं। उसे कुछ कमी महसूस कर लेने का मौका आज तक नहीं दिया। वह तो चाहती थी कि दिनेश बड़ा अफसर हो, दोनों साथ रहें। वह बात न हुई, वह उम्मीद खतम हो गई थी। दिनेश ने उस के विश्वास की परवा नहीं की।

मि० माथुर कहते थे, "मिस अचला दरी का डिजाइन! आप साथ चलो चलें तब ही तय होगा।"

गोल कमरे के लिए, वह एक अच्छे, नए डिजाइन की दरी चाहती थी। दिनेश जब आगाह कर गया था—तुम अपने को समझ लो अचला। उसी के एक सप्ताह बाद ही एक दिन मि० माथुर ने आकर कहा, "चलो आज दरी का आर्डर दे आवें।"

वह सिविल सर्जन मि० माथुर के साथ जेल गई थी। वह लाल-लाल ईंटों की बनी ऊँची इमारत! मि० माथुर के आफिस में बैठी वह दरी का डिजाइन देख रही थी। जेलर रेखाएँ बनाता समझा रहा था। पास की मेज पर मि० माथुर जरूरी कागजों पर दस्तखत कर रहे थे। कुछ दूरी पर कैदी लोग खड़े थे। कैदियों में हल्ला मचा। उसने देखा, दो कैदी एक को पीट रहे थे। वार्डर उस कैदी को आगे लाया। उसकी नाक से खून बह रहा था। माथे पर गहरा घाव था। वार्डर बोला था, "यह अण्डर—ट्रॉइल है हजूर।"

अचला ने देखा, वह दिनेश था। वह सन्न रह गई थी। दिनेश उसकी मेज की ओर आया। अचला के हाथ से कलम ले कागज पर जाल बिछाता बोला था, "यह सब से नया डिजाइन है मिस

अचला !" कमजोरी की वजह से लड़खड़ा कर जमीन पर गिर पड़ा था।

तन्द्रा से चौंकती वह अपने में गुनगुनाई थी—'दिनेश' ! सिपाही उसे ले गये थे। और वह लौट आई थी। लौट कर परसों से अपने को समझ लेना चाहती है, दिनेश वहाँ क्यों ? था वह बहता हुआ खून...। अब...। जीवन का सारा छुपा दुःख खुल जाता। याद आती बचपन की बातें, वह तो ऊँचे-ऊँचे पेड़ों पर चढ़ कर उसके कहने से पक्के फल तोड़ कर लाता था। बिलकुल निडर—भय से भिड़ने हर वक्त तैयार। कभी अचला की बात की अवज्ञा न की थी। रूठ जाने पर नए-नए तरीकों से मना लेता था। तब क्या दोनों नासमझ थे ?

एक-एक धुँधला चित्र आगे आता। जरा झाँकी देकर छुप जाता, सुझाता, 'अचला, यह तू क्या सोचती है।'

अचला चुप रहती। अपने लिए भला वह क्या ठीक समझती। जैसे कि दिनेश अपनी बाहुओं को फैलाता कह गया हो, मैं तुमको खूब पहचानता हूँ अचला। तुम्हारी पसन्द की दरी का डिजाइन यह है। तुम्हारी रुची की पहचान, भला यह हक क्या मुझे नहीं !

भूल,-भूल-भूल......! मि० माथुर कुछ कहते नहीं। कहीं स्वार्थ उनको नहीं छूता। वे अचला के आदर को पहचानते हैं। वह उसका कितना खयाल नहीं रखते। घमंड उनको नहीं। दुनिया ठीक सोचती है। अचला के मि० माथुर स्वामी होंगे, यह उसकी भी हवस है, फिर दिनेश......?

एक दुःखान्त का सवाल क्यों उठा ! वह अपनी भावनाओं को दिनेश के आगे झुका देना चाहती है। साबित कर कि नारी कमजोर है। यह वह न सह सकेगी। मि० माथुर के साथ समाज में वह मस्तक ऊँचा कर चलती है। शहर की तमाम युवतियाँ उससे ईर्षा करती हैं। एक दिन जब.....। वह ठीक है। ज्यादा क्या सोचे।

लेकिन, दिनेश ने इङ्गलैंड चले जाने पर जब पत्र न भेजा था, तब वह कितनी गुस्सा नहीं हुई थी। आखिर पत्र आया था। एक फोटो साथ था। लिखा था—यह दुनिया अजीब है अचला। यहाँ के मनुष्य ठीक बात जानते हैं। कर्तव्य का मूल्य समझते हैं।

देखा था फिर एक जीवन उसने, अपने को दिनेश के साथ। सारा पिछला मजाक आगे आता। दिनेश उसका कान उमेठता कहता था, 'यह हक भी मुझे है।' तब अपनी तौहीनी पर अचला उससे न बोलने का इकरार मन ही मन करती थी। लेकिन !

काश कि यह बचपन का झगड़ा ही होता। आज अब दिनेश ! उनका वह झगड़ा ! सोचा फिर उसने, हमारा समझ ही हमारी अज्ञानता तो नहीं। हमारा एक दूसरे पर दावा कि हम बड़े हैं ही तो हमारी भूल नहीं।

हार्न की आवाज सुनकर वह चौंकी। मि० माथुर आये थे। वह संभाल गई। वे आकर बोले, "आप अब कैसी हैं। ज्यादा उत्तेजित रहना ठीक नहीं, उस दिन का वाकिया ही ऐसा था। कितना बुरा पेशा है यह। आपको पूरा विश्राम चाहिए।"

अचला अपने दिल के हल्ले को दबाती चुप रही।

नौकरानी चाय ले आई। चाय की चुस्की जल्दी-जल्दी लेते मि० माथुर बोले, "मुझे आज जल्दी जाना है। जेल से अभी जरूरी बुलावा आया है।

अचला ने पूरी आँखों से मि० माथुर की ओर देखते दुहराया, "बुलावा !"

मि० माथुर ने भूल से कह ही दिया, "परसों वाला कैदी मर गया, उसकी लाश का 'पोस्ट मार्टम' !"

अचला चौंकी, गुमसुम रह गई। उसे कुछ सूझा नहीं।

अविश्वास को ठुकरा, दबे स्वर में बोली, "मर गया," चाय की प्याली काँपते हाथ से छूट पड़ी। सारी चाय साड़ी पर बिखर गई।

मि० माथुर बोले, "वह तुम्हारे लिए मरा। कुछ कैदी तुम पर भली-बुरी बातें कर रहे थे। वह उनको समझाने लगा। एक खूँखार कैदी ने गुस्से में उस पर हमला किया। वह नामी बैरिस्टर था। देश के लिए!"

अचला की आँखों की पलकें भीग गईं। बोली वह उठते-उठते, "तुम अब जाओ डॉक्टर—वह बचपन का मेरा साथी था। हमने हमेशा साथ-साथ रहने का इकरार किया था। झगड़ा कर हम अलग हो गए थे, अब दोस्ती फिर हो गई। वह अपना काम अधूरा छोड़ गया है। मैं उसका नेम निभाऊँगा।"

बेहोश होकर वह मि० माथुर के पाँवों पर गिर पड़ी।

सभ्यता की ओर

झड़बेरी का बड़ा खेत ! झाड़ से ठूँठल खड़े थे। आगे, आँक से भरा मैदान। इधर-उधर दूर-दूर तक शायादार पेड़ का कोई चिह्न नहीं था। रेतीली जमीन, बिखरे कहीं-कहीं पर जानवरों के खुरों के निशान ! ऊपर कड़ी धूप। व्यस्त और थका रञ्जन, आगे बढ़ रहा था। वह आगे ही बढ़ता रहा। पीछे मुड़कर देखना उसे नहीं था। बैलगाड़ी के पहियों से बनी हुई लीक, रास्ता पहचान लेने का एक सही साधन था। अभी-अभी उस उजाड़ ऊँची-नीची धरती पर एक बैलगाड़ी घाव बना, उसे याद कर लेने के लिए छोड़ गई थी। आगे दूर-दूर तक कुछ दीखता नहीं था।

रञ्जन किशोर के गाँव जा रहा है। रञ्जन देहाती जीव नहीं है। उसे देहात की चाहना कब थी ? अब आज वह भूख नहीं मिटाती है। एक भारी पीड़ा दिल में दुबकी हुई मिलती। वह अपने में नहीं था। अब आज का सही ठिकाना देहात लगता था। उसने मतलब से बाहर जाना कब-कब सीखा है। उसने कब जाना था कि गाँव का जीवन होता है। वहाँ के मनुष्य भी जनता की संख्या बनाते हैं। उनका एक दायरा है। वहाँ पनपने के लिए जगह जरूरी है। और रञ्जन ने उस किशोर से एक दिन वादा किया था। वही सही मान कर आज गाँव की ओर उसके घर जा रहा है।

किशोर का कहना, 'रञ्जन वहाँ तुझे रिझाने कुछ नहीं है। रूखा वातावरण। क्या तू गंवारों के बीच रह सकेगा ? सारी बात गलत लगती है। वास्तव की भीतरी तह में आनन्द नहीं है। भला शहर के जीव को देहात क्यों भाने लगा ?

रञ्जन का जवाब, 'तुम सही बात नहीं कहते हो दादा। मैं अपने को ठीक साबित करूँगा। उसमें उलझन, अड़चन कहीं कोई नहीं है। तुम्हारे नहीं, जाऊँगा चाची के पास। फिर वहीं रहूँगा। तुम मेरी माँ के बेटे बन गए। क्या मैं चाची के पास नहीं जाऊँगा? यह कैसा न्याय होगा? स्वार्थ में कोरा रहना अनुचित लगता है। ऐसी बात सही-नहीं होगी। अरे क्या तुमको विश्वास नहीं?'

'रञ्जन!' किशोर गहरी भावुकता के बीच बात काटता।

'कह दिया, मैं जरूर-जरूर आऊँगा। एक दिन कहूँगा, देख तो चाची मैं आ गया हूँ।'

किशोर हँस पड़ता! फिर कहता, 'मैं कब मना करता हूँ।'

किन्तु बात का जीवन में निभ जाना उतना सरल नहीं होता है, जितना कि हम उसे आसानी से कह दिया करते हैं। रञ्जन वहाँ अब तक नहीं जा पाया। रोज उसकी उम्मीद पिछड़ती गई। अब सावधान रह कर भी उसे न निभा सका। दिन और महीनों से बने हुए कई साल गुजर गए। आज वह बात अब निभती लगी। वह निपट अकेले ही वहाँ जा रहा है। चारों ओर टटोल लेने पर कहीं कुछ प्राप्त नहीं था। एक रेखा-चित्र याद आता। वही अब सही रास्ता लगा। किशोर का अपने गाँव का बयान—तीन मील रेतीला भूड़, नदी के किनारे की रेतीली जमीन, जहाँ झाड़ियाँ वगैरा बहुत होती हैं फिर एक गाँव; आगे कुछ दूरी तक खेत ही खेत, एक बड़ा बाग, और......।

—रञ्जन के टोप ने पसीने की बूँदों को रोका नहीं। ठोढ़ी के नीचे से एक-एक बूँद टपक कर रेत में खोने लगी। उस गरम रेत में सूख जाती थी। अब भारी प्यास लगी थी। उसने 'थरमस' खोला। बरफ का पानी पी लिया। चुपचाप आगे-आगे बढ़ने लगा। सहज के बाहर रह कर उसे सुगमता की चाह थी। उस एक राह के सिवाय अब अपना कुछ पास नहीं था। मन में भ्रम उठता। वहाँ एक बेकली थी।

छी ! छी !! वह आगे पड़ी किसी जन्तु की हड्डियाँ। वे सींघ, वह रीढ़ का फैलाव... ।

किशोर ने समझाया था—उसकी माँ आँखें कम देखती है। टटोल कर पहचान लेगी। श्यामा ने एक दिन भूल से आँख की दवा के धोखे में टिंचर डाल दिया। उपचार के बाद अब वह धुँधला देख पाती है। उसने कहना—मैं हूँ, रज्जन !

वह चाची, उसका एक खयाली चेहरा गढ़ेगा। किशोर ने जो सुनाया होगा, वह उतनी ही जानती होगी। फिर वह भूरी गाय ! किशोर ने बचपन में उसका दूध पिया है। उसकी सफेद 'बाछी' की चर्चा वह हर वक्त किया करता था। उसने बाग में कलमी आम लगाये थे। अब पाँच साल के बाद क्या वे फल नहीं देते होंगे ?

वह श्यामा ! किशोर अपनी इस बहिन का अकेला भाई था। उसकी साधारण पहचान किशोर ने बतलाई थी। दाहिने गाल पर एक खोट है। गाय के सींघ से बचपन में घाव बना था। बड़ी कठनाई से खून बन्द हुआ। किशोर को श्यामा की याद बार-बार आती थी। रज्जन श्यामा की सुनी खयाली तसवीर पहचान गया था। अब वह बिरानी साबित नहीं होगी, यह विश्वास होता। तब श्यामा बारह की थी; कौन जाने अब उसकी शादी हो गई हो ? वह एक दिन दुलहिन बन कर ससुराल चली गई होगी। तब कौन कहेगा —रज्जन भैया ?

उस रेत से भरे मैदान के चारों ओर रज्जन ने एक शूनी दृष्टि डाली। कहीं कुछ न था चारों ओर खाली और शून्य सा लगता था। उसके दिल का उमड़ता हुआ दुःख चारों ओर से उसे अपने में समा रहा था। एक विद्रोह उठता था। फिर कुछ न पाकर चुप रह जाता था। कहीं राहत मिलेगी, विश्वास नहीं होता था ! कुछ सही बात नजर नहीं पड़ती थी। वह बैलगाड़ी की 'लोक' उथले बालू में रुक गई। कहीं, आँक के पौधों के बीच एक मात्र चिह्नी रेखा मिल नहीं

थी। फिर धोखा देकर ओझल हो जाती। अब उसने जान लिया कि जीवन का सगा और सही खेल क्या है? वह स्वयं किसी अनजान वस्तु के अस्तित्व में पसरने लग गया।

आगे बढ़ता हुआ, वह सोचने लगा कि कहेगा— देख री चाची मैं आ गया। चाची!

फिर—ओ श्यामा?

यह बात कहीं सही जगह नहीं बना पाती थी। काश कि सब कुछ सच निकलता? जिन्दगी एक सुघरी लकीर होती। अब उस लड़की को इस भाँति पुकारना कब आसान बात थी। वह आखिर यह सब कैसे कहेगा? सहज कुछ महसूस नहीं होता था। वह अपने को निर्बल पाता। सारी सामर्थ किनारा काट, उसे अकेला छोड़ कर भागती लगी। कहती हुई—ओ... ! वह सब भ्रम था। झूठ! झूठ!!

वह लम्बा-चौड़ा मैदान पीछे छूटने लगा। आगे, कुछ खाली खेतों पर नजर पड़ी। अब वह एक गाँव के बीच था। उसने वहाँ जीवन पाया। वह भारी थकान के बाद वहीं विश्राम क्यों नहीं ले लेता है। फिर सारी बेकरारी और फीकापन हट जावेगा। थकान मिट जायगी। यह बात कैसे कहीं ठैरती! वह गाँव, खेतों, झोंपड़ों और बड़े-बड़े पेड़ों के बीच पसरा हुआ था। वह बस्ती दिल में एक हल्ला पैदा करती थी। फिर भी मन को वहाँ नहीं टिकाना था। उसे आगे जाना है। रुक नहीं सकता है।

उफ, किशोर को इन सुन्दर गाँवों से बाहर जाने की फुरसत कैसे मिली? क्यों वह मौका पा गया था? वह यहीं उपाय बना क्यों नहीं रह गया। वह किस तत्व का बना था? जिसे अपने से जरा ममता नहीं थी। परवा कर लेने कम वक्त था। वह अपनी हिफाजत कर लेने वाला ज्ञान नहीं सीखा। पैदा होकर स्वयं चलना सीख, उसने

खड़ा होना जाना। और एक दिन सारी घिसी दुनिया के बीच जगह पाकर, वह उसके बीच रह गया है।

रज्जन ने कब-कब किशोर की बात काटी थी। झगड़ा करने के बाद वह गुमसुम बना, एक अहसान लागू कर, जब नाराज होता; तब ही एक बार किशोर के पुकारने पर—रज्जन? यह सुन जवाब देना सीख गया था—क्या है दादा? इसके बाद सब मान्य उसे था। कभी उसने किशोर की किसी बात की अवहेलना नहीं की थी।

कुत्तों का भूंकना। अजनबी जन्तु को गाँव के बीच पा, वे उस पर अविश्वास करते हैं। कहते लगे—जा! जा!! अपने सभ्यता वाले दायरे में। अपना व्यवहार-व्यापार हमारे नजदीक न ला। हमारा समाज उस सबका कायल नहीं है। फिर एक ओर बूढ़ों का जमघट है। बच्चे खेल रहे हैं। कहीं पास कुछ ग्रामीण नारियाँ एक निराश पूर्ण गीत गा रही हैं। गीत के भीतर एक गहरी निराशा छुपी हुई है। वह दुःख और पीड़ा को उभार-उभार देती है। गीत का एक-एक स्वर आकार बन कर दिल के सोये हुये दुःख को छूता कहता है—उठ-उठ! आगे नीम की मोटी टहनी पर लड़कियाँ झूला झूल रही हैं।

फिर याद आतीं—ऊँची-ऊँची वे दीवारें—लाल चिट्टे ईंटों की बनी इमारत? जहाँ मनुष्य की हिफाजत कानून करता है।

हिश!…फिर एक बार सारी अन्तात्मा में छी-छी-छी उठी। वह कमरा! उङ्गलियों के बीच पिचके खटमल। अब बाकी घृणा उभरती लगी।

पिंग…! पिंग…!! पिंग!!!…वह मच्छरों की बस्ती। उनका ठिकाना। वे वहाँ अपनी सभ्यता फैलाने को तुले हुए मिलते थे।

वहीं पाँच साल काट कर, वह आज अपने को एक नया जीव क्यों

पाता है ? कहीं कोई लोग पहचाने नहीं लगते थे। उसे इन इतने अनजानों के बीच नहीं टिकना है।

मूँज की रस्सी के लिए बान कूटते-कूटते, जब रञ्जन के हाथ दुःखने लगते। वह थक जाता। तब किशोर कहता—'वाह, खूब !' उसके काम को निपटा देता। रञ्जन अपनी हथेली के छालों को तोड़ना चाहता। 'हैं ! हैं !!' किशोर टोकता। कहता, 'ऐसा न करना। ज्यादा तकलीफ देवेंगे। अब आदत पड़ जावेगी। अब तो यह इम्तहान शुरू हुआ है।'

रञ्जन उस सहारे के बीच चलना सीख गया था। कर्तव्य में कठिनाई निभ जाती। किशोर साक्षात 'कर्तव्य' मिलता।

हार कर रञ्जन कभी दुःख मोल ले लेता। तब किशोर समझाता, 'अब रञ्जन पक्का वालंटियर बनेगा।'

रञ्जन चुप न रह कर हँस पड़ता, कह देता, 'कैप्टिन बनूँगा दादा। भला तुम्हारे साथ मैं कोरा रह जाता।'

जिस दिन किशोर को पाँच साल की जेल सरकार के खिलाफ लेकचर देने में हुई थी। उसके तीन दिन बाद रञ्जन ने वह सब दुहरा कर पासपोर्ट लिया था। दादा के चरण छूकर बोला था, 'लो दादा मैं आ गया।'

आश्चर्य से किशोर ने कहा था, 'रञ्जन !'

'तब क्या मैं चैन से 'मोटर-बोट' की सैर करने काश्मीर चला जाता ?'

पगले रञ्जन के इस व्यवहार पर किशोर चुप रह गया था। कैसे समझता कि सही बात उसने नहीं की थी। जोश को समझ से तोलना लाजिम है। रञ्जन के उत्साह से आनाकानी उसे नहीं थी। फिर भी पूछा, 'और अम्मी ?'

'सब लोग पिछले दिनों काश्मीर चले गये हैं। चलो जान बची। मैं सोचे था कि तुमसे मुलाकात हो न हो।'

वही रञ्जन तो एक महीने पहिले झगड़ पड़ा था। उसने आज अपनी बात सही साबित कर डाली थी। किशोर का कहना था, 'रञ्जन को आइ० सी० एस० में बैठना पड़ेगा।'

रञ्जन का जवाब था, 'उसे अफसर नहीं बनना है।'

किशोर तर्क करता, 'समाज की सब जरूरतों को पूरा होना है। हम उनसे बाहर नहीं हो सकते हैं। यही तुम्हारी ठीक जगह है।'

तब ही रञ्जन कुढ़ पड़ता। कहता, 'यह सीख किसी और को देना दादा! तुम ही न एक दिन कहते थे कि सारा समाज गैर-जिम्मेदार आदमियों के हाथों में आ पड़ा है। सरकार आई० सी० एस० के 'मसीनी नमूने' भेजती है—हुकूमत करने के लिये। वास्तव की भीतरी गहराई वे नहीं जानते हैं। नहीं पढ़ पाते, कहाँ कितनी इन्सान की मुसीबतें हैं। हर बात पर उनका एक अजीब दृष्टिकोण लागू होता है। रास्ते में पड़े, मरे गरीब की लाश का पोस्ट-मार्टम कर यही रिपोर्ट उनको देनी है—ठण्ड और भूख से मर गया। गरीबी और भूखे रहने का सही कारण जान लेने से उनको सरोकार नहीं। खेती खराब होने पर अथवा और मुसीबतों को हल कर लेने के लिये एक कमेटी बैठा 'रिपोर्ट छपवा कर ही वे अपनी जिम्मेदारी निभा लेते हैं।'

फिर किशोर बोला था, 'रञ्जन!'

भला रञ्जन चुप रहता, कहता ही गया था, 'बुराई को बुराई कह कर पुकारने की आदत सबको है। उसे कोई सुधार लेना नहीं चाहता है।'

ग्रामीण रमणियों का वह गीत! रञ्जन अब उससे अलग था। अब सब पीछे-पीछे छूटता लगता था।

किशोर दृढ़ था। रञ्जन पहचान कर उससे अलग नहीं हुआ। किन्तु, जीवन में कब कौन भाग जाता है? अपने से छुटकारा पाकर फिर नहीं लौटता है। किशोर ने अपना सामर्थ्य से सुधार कर लेना

चाहा था। उसकी बात कहीं कोई ऐतराज नहीं लगती थी। वह मनुष्य के ऊपर गलत न्याय को स्वीकार नहीं कर सकता था। उसे सही पर सही दस्तखत चाहिए थे। किशोर को एक छोटे अपराध पर जब कोड़ों की सजा मिली। तब एक दिन उसने 'भूखा' रहना मंजूर कर लिया था। शरीर के ऊपर उठी भूख को अलावा उसने रखना चाहा। तब ही एक दिन वह रज्जन से अलग कर लिया गया था।

—गाँव पीछे छूट गया था, खेत भी पार हो गए। धीरे-धीरे संध्या हो आई। वह बाग से भी गुजर गया। किशोर का गाँव दीख पड़ा।

पाँच साल का जीवन कल का सा लगता था। एक-एक पन्ना, एक-एक बात......! समूची किताब वह कहाँ था? सब भार सा था।

सोचा पास जाकर कहेगा, चाची! श्यामा!! व्यवहार में सब कोरा लगता। यह इतना कह कर, सब कब अधीन बात रही थी।

किशोर का मकान; आँगन में एक ओर 'कौन' गाय दुह रहा था? वह खोट......?

गाय चौंकी। श्यामा ने आँचल सरकाया। रज्जन संभल कर बोला, "श्यामा चाची घर में हैं।"

अवाक श्यामा ने उस अनजबी पुकारने वाले को देखा।

जल्दी जल्दी में वह बोला, "कहना रज्जन आया है।"

"वह पार साल मर गई।" उसे पहचान कर श्यामा बोली। अपनी आँखों में भरी बड़ी-बड़ी बूँदे आँचल से ढकती, एक ओर पड़ी चारपाई सरकाते हुए कहा "बैठो। भैया कब आवेंगे?"

रज्जन उसे कैसे समझाता कि उन सब ने एक दिन देखा था, भूख हड़ताल करने पर एक लम्बे अरसे के बाद, उसके भइया की लाश 'मुरदा गाड़ी' पर 'कहीं' पहुँचाई गई थी।

उसका व्यक्तित्व

याद आता है, मनोरथ का कहना, "क्या तू डर गया था ?"

"हाँ, इस तरह !

"सरे आम न घूमें, क्या लुकछिप कर ही रहा करें ।"

"तुम तो ट्राम में भरी पिस्टल लेकर... ...... ।"

"अपनी रक्षा के लिए नहीं, कर्तव्य और संस्था के आदर के लिए सावधान रहना पड़ता है ।"

"ठीक है बात, फिर भी अनुचित लगता है । कुछ थोड़ा हिफाजत का तकाजा !"

"हिफ़ाजत !" मनोरथ धुर्पद में हँस पड़ा था । उसकी आवाज उस धावे की गन्दी कोठरी के भीतर गूँज उठी । कुछ दूरी पर सामने बाहर बरामदे में बैठा हुआ स्टेशन का कुली अचाक हमें देखता ही रह गया । उसकी दृष्टि में इस तरह हँसना बड़प्पन नहीं था । एक ही ऊँचाई की कुर्सियों पर बैठ मेज पर खाना खाना, कुछ भी फर्क की बात नहीं थी । तब किस बात पर बड़ा-छोटा गिन लिया जाय । 'खालसा-होटल' की गुल लगी मिट्टी की कुलिया की रोशनी धुँधली लाल-लाल, बीच-बीच में चमक उठती थी ।

मनोरथ ने तन्दूर की बनी एक और रोटी मंगवा ली । वह तोड़-तोड़कर खाने लग गया ।

मैं एक अरसे से इस मनोरथ को जानता हूँ । देखने में कमजोर और पीले चेहरे का है; उस चमड़ी के भीतर ज्वालामुखी का अन्दाज किसी को नहीं है । सरकार की आँखों में उसका मूल्य बहुत है ।

सेक्रेटेरियट की फाइलों में उसका पूरा हवाला दर्ज है। एक बड़ा महकमा उसकी ओर से रात-दिन चौकन्ना रहा करता है। उसकी लाश तक के लिए इनाम की बोली है। उसकी चर्चा के प्रति रोजाना अखबार अपेक्षित रहा करते हैं।

एक कागज का टुकड़ा आगे बढ़ा, मनोरथ ने कहा, "इसे स्टेशन वाले, रेलवे-पुलीस के दफ्तर के बाहर, साइन बोर्ड से फाड़ कर ले आया हूँ।"

तो मैं पढ़कर हँसा और बोल बैठा, "दिल तो करता है, तेरी वजह से मालमाल हो चन्द साल ऐश किया जाय।"

"ले फिर!" मेज के नीचे से मजाक करते हुए उसने पिस्टल मेरी ओर बढ़ा दी। उसका स्टील मेरे पाँव को छू गया। वह बहुत ठण्डा था।

देश के लिए जान हथेली पर लिए-लिए फिरने वाले इन नौजवान दोस्तों का किस्सा किसी से भी कम दिलचस्प नहीं है। इनको अपनी कोई परवाह नहीं रहती। बार-बार मौत को धोखा देते चले जाते हैं। कहते फिरेंगे, देश उनका है, वे उसी के हैं। हर वक्त तैयार मिलेंगे। उनको न जिन्दा रहने की खुशी है, न मर जाने का गम। व्यवहार-रहित जो ठहरे।

"अभी-अभी मैं पान लेकर आया", कह कर वह मनोरथ चला गया। मैं सोचने लगा कि यह कैसा धन्धा है। इधर-उधर डोले-डोले फिरना, ऐलानियाँ आजादी की ओर लोगों को इशारा करना। क्या और कोई काम इन लोगों के लिए नहीं है। एक गुप्त संस्था कायम कर देश को स्वतन्त्र करना चाहते हैं। गुलामी में किसी तरह अहसान बने पड़े रहना इनको पसन्द नहीं है। कोई ठौर-ठिकाना नहीं। बड़ा कठिन व्यवहार है सब। जहाँ जगह पाई, रह गए। खाने का ठीक सा सवाल हल नहीं है। अपनी जिन्दगी तक से सरोकार नहीं है। बढ़ते-बढ़ते ही चले जाते हैं। उन्हीं फक्कड़ युवकों का यह मनोरथ

सरदार है। जिसको पकड़ने के लिए व्यर्थ ही सरकार ने इनाम रख कर उसकी हैसियत बढ़ादी है। औरों को भी यही रुतबा उसने दिया है। सरकार की आँखों में इन छोकरों का धन्धा खतरनाक है। यह मनोरथ पिस्टल के सूराख के भीतर से ही दुनिया को देखा करता है। जितना हिस्सा देख पड़े, उसी में सन्तुष्ट नहीं। वह तो कभी बड़ा नहीं था। एक दिन दाढ़ी-मूँछ बनावटी लगाकर एकाएक मेरे पास आकर बोला था, "पहचाना मुझे।"

"आपको !"

"तब तो तू भी शेर है, शायद अक्ल की दाढ़ नहीं आई है।"

"ठीक बात होगी लेकिन आप...।"

"मैं हूँ मनोरथ।"

"तुम हो।"

"घबड़ा क्यों गया है।"

"नहीं तो।"

"तेरे दिल की सारी धुकधुकी महसूस कर रहा हूँ। क्या करता है इस शहर में ? घर में तो सब भले हैं ?"

"पिताजी पिछले साल मर गये।"

"और सब बिल्कुल ठीक है।"

"यहाँ नौकरी कर रहा हूँ।"

"तनख्वाह कम होगी, इसीलिये शर्माकर बोल रहा है। नौकरी करनी ही चाहिए। ठीक किया। सबका आवारा रहना ठीक नहीं होता। क्या मिल जाता है ?"

"यही पचास !"

"पचास कम थोड़े ही होते हैं। कॉलेज वाले टोस्ट और अंडे याद आ रहे होंगे। बहुत बड़ी है दुनिया तो। नरवस होना अनुचित होगा। बिलकुल मुरझाया लगता है !"

"सेहत तो तुम्हारी भी खराब लगती है।"

"हमारा कुछ ठीक नहीं रहता। शरीर की रक्षा करने का वक्त कहाँ है?"

"मतलब तो होना ही चाहिए।"

वह मनोरथ ठीक वक्त पहचानता था। पान लाने का बहाना बना, वह नहीं लौटा। मैं उलझन में उठा ही था कि सी० आई० डी० पुलीस के दरोगा ने पूछा, "आपके दोस्त कहाँ हैं।"

सारी परिस्थिति समझ मैं संभल गया। बोला, "मेरा दोस्त कोई नहीं है।"

"अभी जिनके साथ आप खाना खा रहे थे।"

"अच्छा वह साहब? ठीक, पान लेने चले गए!"

"कितनी देर हुई है?"

"यही बीस मिनट!"

"आप जानते हैं वे कहाँ रहते हैं?"

"यहीं अभी पहली मुलाकात हुई है! कुछ मालूम नहीं। कौन थे वह?"

"बड़ा खतरनाक आदमी है जनाब! फिर चकमा देकर निकल गया!"

वह मनोरथ कितना सावधान रहा करता है। यदि विवेक के साथ न चले, तो न जाने कब क्या हो जाय। बाहर निकल, कुछ दूर चौरस्ते के नुक्कड़ वाली दूकान पर पान को पैसा दिया, कि पान वाला बोला, "एक साहब तो अभी रुपया छोड़ गए हैं।"

"कौन?"

"बम बनाने वालों में हैं। आकर बोले, धाबे से अपने साथी को बुला लाऊँ, दो पान जल्दी लगा देना।"

"तब कहाँ हैं वह?"

"साइकिल भी ले गए!"

और मैं हैरात में रह गया। कितनी समझ उस मनोरथ में थी। इसी के लिये वह चुपके धाबे से उठ कर चला आया था। वह एक खासियत रखता था कि फौलाद की तरह दृढ़ था। अन्यथा अपने सारे नाते-रिश्तों को तोड़कर अकेला खड़े होने की क्षमता कितनों में होती है?

—अक्सर उस लड़की विनोदिनी पर सोचा है। उतनी तेज लड़की मैंने कहीं आज तक नहीं पायी है। वस्तुतः सामाजिक कसौटी के एक पहलू से तोला जाय, तो कोई उसे माफी नहीं देगा। उसका मामूली अपराध नहीं है। नारी का कलंक पोंछने का रिवाज समाज के बीच नहीं है। अपने पति को त्यागकर, वह लड़की इन आवारों के गिरोह में शामिल हो गई। पति असमर्थ था। उसके चरित्र की व्याख्या के अलावा और वह क्या करता। तब मान लेना पड़ेगा कि पति के घर की रखवाली कर, सन्तान की पैदायश करना ही सब लड़कियों का उत्तरदायित्व नहीं है। एक दरजा वह काम बखूबी निभा सकता है। विनोदिनी ने विश्व-विद्यालय में उच्च शिक्षा पाई थी। अपनी हिफाजत करना सीख गई थी। जब शादी हुई, अनिच्छा उसने जाहिर नहीं की। एक दिन चुपके वह क्रान्तिकारियों की संस्था में शामिल फिर हो गई थी। किसी को भी अचरज नहीं हुआ। आश्चर्य तो यह था कि नगर में वेश्या का रूप बना, सितार तबले साथ के गाने वाला झूटा आडम्बर रच, उन आवारों की संरक्षता का कठिन भार भी बहुत दिनों तक वह निभाती रही। यह जाल अधिक दिनों तक नहीं चला। जब पुलीस ने उस मकान पर धावा किया, तो थोड़ा सामान के अलावा कुछ खास चीज हाथ नहीं लगी। सस्ते रोल्ड-गोल्ड के चमकते गहनों का बॉक्स व कुछ और सस्ता सामान लेकर वे लौट गए थे।

अनायास विनोदिनी से वास्ता पड़ गया। मनोरथ तो लापता हो गया था। उसका अधिक कुछ ज्ञान मुझे नहीं था। एक दिन सिनेमा

हॉल के बाहर खड़ा टंगी हुई तसवीरों को देख रहा था, तभी एक लड़का एक कागज का टुकड़ा दे गया। मैले-कुचैले कपड़े पहने, उस कुरूप लड़के को देखकर मुझे बहुत घिन हुई। कागज लेकर उसे देखूं कि वह भीड़ के बीच खो गया था। बड़ी देर तक भारी उपेक्षा के साथ उस कागज को उङ्गलियों के बीच दबाए हुए ही रह गया। सोच कर फिर पढ़ा, लिखा हुआ था 'आप से कुछ जरूरी बातें करनी हैं। नाम के पास तांगा खड़ा है। विनोदिनी'

कागज के टुकड़े-टुकड़े कर, कुतूहलवश, मैं वहाँ पहुँच गया। ताँगे पर एक युवती बैठी हुई थी। मैं भी चुपचाप बैठ गया और ताँगा कम्पनीबाग की ओर बढ़ गया था। बाग के कोने वाली बेंच पर हम बैठ गए। विनोदिनी बोली, "मनोरथ बाबू के पास एक आदमी को भेजना जरूरी है। इस वक्त विश्वसनीय आदमी कोई मेरे पास नहीं है। वे आप का नाम जरूरत के लिए कह गए थे।"

"क्या करना होगा?"

"एक जरूरी चिट्ठी है। कल तक उनको मिल जानी चाहिए।"

"वे कहाँ हैं?"

"यहाँ से बीस मील दूर एक गाँव है। साइकिल से जाया जा सकता है।"

"मैं चला जाऊँगा।"

"वह साइकिल खड़ी है। अभी यदि आप रवाना हो जावेंगे, तो आगे वाले गाँव में दो-तीन बजे रात तक पहुँच सकते हैं। वहीं सुबह तक रहना होगा। आगे घना जङ्गल है।"

सब कुछ समझ, टार्च लेकर मैं साइकिल पर रवाना हुआ। इस जिम्मेदारी को ढोना मुझे मंजूर हो गया। उस मनोरथ ने मुझपर विश्वास क्यों कर लिया। क्या मैं ही इस काम के लिए उपयुक्त व्यक्ति था। और यह युवती विनोदिनी! उस अँधियारी रात्रि में

पैडिल मारता-मारता इतना जान गया कि ऐसी हिम्मत कम लड़कियों में होती है। तब वह कहाँ रहती है? कैसे मेरा पता जान लिया। इस चिट्ठी में क्या होगा? उस पर लाख लगी हुई थी। मनोरथ एक भारी हल्ला मचा रहा था। फिर पैडलिंग, पैडलिंग, पैडलिंग— देहाती रास्ता, वह मेंड़ भी पार कर ली अब एक छोटी आबादी के बीच पहुँच गया था। इसे कचरिया कहते हैं।

कचरिया! छोटी-छोटी झोपड़ियाँ। उस वक्त भी नैपाली औरतें खैर के पेड़ के छोटे-छोटे टुकड़े कर रही थीं। इतनी रात तक काम करना, घड़ी देखी तीन बज रहे थे। मुझे टोप में पाकर ठेकेदार साहब सटपटाते हुए आए। ठीक तरह आवभगत हुई। हुक्का आया। खाने को पूछा गया। नैपालियों की अजनबी बोली सुनाई पड़ती थी। पता चला, सिर्फ पैंतालिस रुपये चार महीने की मजदूरी हर एक की है। उनकी स्त्रियों का पहनावा अजीब था। गले में दुअन्नी-चवन्नी, बीच में गुंथी मूँगों की माला, कानों में विचित्र से गहने।

—सुबह जब नींद टूटी तो देखा कत्था बड़े-बड़े घड़ों में पक रहा था। उस छोटी बस्ती की जिन्दगी से मन संकुचित हो गया। विनोदिनी ने जो भार सौंप कर मुझे कृतार्थ किया, उसके प्रति उऋण मैं हो गया। चिट्ठी पढ़ कर मनोरथ ने कहा था, "है तू होशियार। पकड़ा जाता, दस साल की ठुकती।"

"सिर्फ दस साल!" मैंने मजाक किया।

"तब क्या कालापानी जाने की सोची थी।"

"और तुम यहाँ पड़े हो।"

"अरे यह तो दुहानी है, दुहानी; देख न, चारों ओर कितनी गायें हैं। गोधन लूट रहा हूँ। कुछ और दिन इन्हीं लोगों के बीच रहने का विचार है।"

"दिल लग जाता है।"

"क्यों नहीं, मैं तो मजे में हूँ। कुछ खास कठिनाई रहने में महसूस नहीं होती है," कह कर उसने रोती हुई छोटी बच्ची को बिस्तर पर से उठा लिया। कहता रहा, लल्ली ठीक रोई, तमाम बिस्तर खराब हो गया है। जा पानी तो उठा ला।"

मैं पानी ले आया। वह उसे धोने लगा। बिस्तर ठीक कर, बच्ची को एक सुलझे गृहस्थ की तरह गोदी में ले लिया। इस समझदारी के पहलू की अनभिज्ञता मुझे बहुत खटकी। सोचा मनोरथ के लिए दुनिया कहीं भी सुविधा से खाली नहीं है। मन दुहामी के उस चारागाह की ओर खिंच गया। चारों ओर गाय-बछिया थीं। उन सुन्दर जानवरों को देख कर मन स्वस्थ हो गया। लाल, काले, सफेद, चितकबरी; वे बछिया और बछड़े उच्छृङ्खलता से इधर-उधर दौड़ रहे थे। उनकी असाधारण स्वतन्त्रता थी। वह सुन्दर नजारा देख मैं खुशी से फूल उठा। पास ही एक सुन्दर स्वच्छ पानी का नाला बह रहा था। ठीक तरह हाथ मुँह धोकर लौटा तो थकावट मिट गई। लौट कर देखा, मनोरथ फिर चिट्ठी पढ़ रहा था। पूछा, "विनोदनी तो अच्छी है?"

"मुझे क्या मालूम?"

'कुछ कहा नहीं उसने?"

मैं चुपचाप रहा।

"क्यों, क्या सोच रहा है। यही न कि वह तो देखने में कुछ खास हद मालूम नहीं हुई। फिर भी है वह फौलाद की बनी। छोटे-छोटे क्या, बड़े-बड़े झंझटों की परवा तक वह नहीं करती है। यदि तुम न मिलते, वह खुद साइकिल पर पहुँचती। उसे दुनिया में किसी का डर नहीं है!"

"दुनिया तो......।"

"अपवाद की तू कह रहा है? सारे सुख उसे पति के घर में

प्राप्त थे। वह चाहती, वहीं चैन से पड़ी रहती; कुछ कमी नहीं था। एक बच्चा हुआ, जो कि कुछ महीने बाद मर गया। माँ बन कर भी अपने विश्वविद्यालय वाले फक्कड़ दोस्तों से किया हुआ वादा वह भूल नहीं सकी। बच्चे की मौत के बाद उसे मौका मिल गया। उस गृहस्थी का दरवाजा सर्वदा के लिए बन्द कर वह हमारे पास चली आई। अपने कलंक के प्रति वह उदासीन रहती है। अपनी शक्ति को सही पहचान कर कोई भी डर उसे नहीं; इस सबके लिए दुनिया का मुँह ताकने का वक्त ही उसके पास कहाँ है। अपना कार्य क्षेत्र बना, वह उसी में मग्न रहा करती है।"

ऐसी दबंग लड़कियाँ कितनी दुनिया में मिलेंगी? मनोरथ की सुगमता का अधिक अन्दाज आज तक मुझे नहीं था। वह ऐसे सेवातियों के परिवार में टिका था, जहाँ सभ्य व्यक्ति नहीं रह सकता है। उस परिवार से अलग कहीं वह नहीं लगा। इस सबके बाद ही मनोरथ ने जोर से पुकारा, "भाभी।"

पायजामा पहने एक अधेड़ सी औरत पास के झोपड़े से बाहर निकल आई। नाक व हाथों पर उसके विचित्र बनावट के गहने थे। मनोरथ ने मुझसे कहा, "चाय तो कल चूक गई, मट्ठा आज पी लो।" बस कह दिया, "दो गिलास मट्ठा दे जाना।"

वह औरत दो गिलास भर कर मट्ठा ले आई। हमने गिलास ले लिए। एक घूँट पीकर, मनोरथ हँसते हुए बोला, "शहरी बाबू आए हैं। इनको खाना चाहिए। रात को मुझे भी जाना है।"

"कहाँ?"

"कुछ कह नहीं सकता। फिर जल्दी ही लौट आऊँगा। ऐसे ही काम आ पड़ा है। यह चिट्ठी आई है।"

"नदी वाले जङ्गल से न जाना, कल ही वहाँ शेरनी दीख पड़ी थी।"

"वह मुझ पर रहम कर देगी।"

चौड़े-चौड़े पत्तलों पर खाना परोसा गया। वह खाकर, एक नया स्वाद मिला। अब उसने पूछा, "ये कौन हैं?"

"शहर में नौकरी करता है!"

"विनोदिनी ने भेजा होगा। वह यहाँ कब तक आवेगी? अबको बहुत दिन शहर में लगाए हैं।"

"उसका शहर में रहना जरूरी था।"

अनायास कुछ याद कर मैंने पूछा, "पानवाले की साइकिल?"

"उसको मिल गई होगी।"

"मुझे आज ही लौटना है।"

"सुस्ता कर चले जाना।"

"चिट्ठी का जवाब?"

"रात को मैं पहुँच जाऊँगा।"

"रात को!"

"तुझे तो तैरना ही नहीं आता है। नदी के रास्ते शहर अधिक दूर नहीं पड़ता है। जहाँ हाथ थके, चित्त तैरने लगें। यही दो-तीन घन्टे का रास्ता है।"

"मगर होंगे?"

"अरे मौत तो चींटी के काटने से भी हो जाती है। यह तो तू बड़ी-बड़ी बातें हाँक रहा है।"

"कालेज में तो मैंने भी तैरना सीखा था।"

"यहाँ का बहुत बेढब हिसाब है, समझा! जरा चूके कि···।"

हाथ धो कर बैठे थे कि वह औरत बच्चे को लेकर आ पहुँची। मनोरथ ने उसे ले लिया। लड़की ने आनाकानी नहीं की। वह तो मुझ से पूछ बैठी, "फिर कब आओगे।"

"कुछ कह नहीं सकता।"

"दूर भी है और रास्ता बेढ़ब," मनोरथ जोड़ बैठा।

"साइकिल में दिक्कत नहीं पड़ती।" मैंने कहा।

"तब कभी-कभी चले आया करो।"

कुछ देर बाद मैं जाने को तैयार हो गया। वह औरत पास आकर बोली, "मक्खन तो नहीं खाओगे ?"

"जरूर!" मनोरथ ने जोड़ दिया।

और वह एक कटोरे में मक्खन और गुड़ की अंदरखियाँ ले आयी। बहुत कोशिश करके मैं थोड़ा खा सका। बाकी न खाया गया, तो मनोरथ खिलखिला कर हँस पड़ा, "डबल रोटी, बिस्कुट खाने वाला मुँह है।"

मुझे भारी शरम लगी, फिर भी कटोरा रख दिया। मनोरथ सब उड़ा गया।

मेवातियों के उस छोटे परिवार की पूर्णता से मैं सन्तुष्ट हो गया। आतिथ्य-सत्कार वाली संस्कृति का सुन्दर नमूना वहाँ मिला। उस परिवार की जिम्मेदारी का अंदाज लगा लिया। वह विनोदिनी इसी परिवार में रह जाया करती है। राह में मनोरथ कुछ दूर तक मुझे पहुँचाने आया था। वहीं उसने कहा, "यह परिवार तो मेरा बहुत दिनों का परिचित है। हमारे बंगले के पास ही इन लोगों की झोपड़ियाँ थीं। बचपन से मैं इनके साथ रहने का आदी हूँ। गरीबी इनको यहाँ ले आई। वक्त मुसीबत में ठीक आश्रय मिल जाता है।"

"और विनोदिनी ?"

"पुरुष का मारे-मारे फिरना उचित है। लड़कियाँ यह नहीं कर सकती हैं। यहीं वह अक्सर रहती है। अब सब तकलीफें बरदाश्त करने की आदी हो गई है। चरित्र की कथित-नैतिकता ! वह उसे

धर्म नहीं मानती है। व्यर्थ का एक फरेब उठा, समाज ने एक गलत शास्त्र बनाया है।"

"लेकिन नारी का चरित्र!"

"तू भावना व भावुकता को ठीक समझता ही है। यह कहना कि काँच की तरह एक बार चटक कर वह जुड़ नहीं सकता, झूठ है। विनोदिनी ने तो परहेज हटा लिया। वह भाग कर दल के आगे खड़ी हुई। फिर कुछ सोच, एक नामी वेश्या के पास रह, उसने आदमी को पहचान और तोल लेना सीखा था। अब वह कर्तव्य पहचानती है। कोई काम उसके लिए नामुमकिन नहीं है। भारी एक ताकत वह है।"

सब सुनकर मैं दङ्ग रह गया था। ऐसी कितनी लड़कियाँ समाज में थीं?

—मनोरथ उस रात्रि शहर में आया या नहीं, मुझे कुछ ज्ञान नहीं है। न उसके बाद का इतिहास दो साल तक ही मुझे मालूम हो पाया। अखबारों में यह जरूर पढ़ा था कि वह गिरफ्तार हो गया है। मुकदमा उसपर चला था और ट्रिब्यूनल ने फाँसी की सजा देकर, अपना सही उत्तरदायित्व निभाने में कोई कसर नहीं रखी।

एक दिन पुलीस ने मुझे बुला भेजा था। मैं वहाँ पहुँच गया। चुपचाप पुलीस-कप्तान के ऑफिस में पहुँचा था। देखा एक कुरसी पर कोई अंगरेज अफसर बैठे थे। पास ही दो कुरसियों पर दो हिन्दुस्तानी साहब। एक गँवारिन सी लड़की सोफा पर लधरी हुई थी। मैं भी इतमिनान से एक खाली कुर्सी पर बैठ गया। यह धन्धा कुछ समझ में नहीं आया। सवाल किया साहब ने, "आप इसे पहचानते हैं।"

"नहीं!"

"कहीं देखा होगा।"

"बिल्कुल नहीं जानता हूँ।"

"ठीक-ठीक पहचान लो।"

उस मेवातियों की तरह पायजामा पहनने वाली लड़की के रूप-रङ्ग को कैसे भुला देता। चुपचाप मन ने सफाई पेश की, 'विनोदिनी यहाँ कैसे आ गई है।' तभी देखा मेजपर पड़े खाली कागज पर वह कुछ लाइनें खींच रही थी। और चुपके आँख बचा कर उसने गुंडी-मुंडी बना कर वह नीचे फेंक दिया। मैंने फीते बाँधने के बहाने उसे उठा लिया। लौटकर जब बाहर निकला, तो पता, 'मनोरथ बाबू को फाँसी हो गई है।'

सारा नाटक इस तरह मिट गया। बात कुछ समझ में नहीं आई। इस विनोदिनी का अब क्या होगा! मैं चुपचाप कुछ दिनों तक परेशान रहा। पर क्या करता।

एक महीने के बाद सुना कि विनोदिनी को सात साल की सजा हुई है!

सुरीला

खाने की मेज पर बैठी सुरीला चुपचाप चाय की प्याली ठीक ढङ्ग से सजा रही थी। अभी तक केप्टिन नहीं आया था। बड़ी सुबह एक जरूरी आदेश पाकर वह 'वार आफिस' कार पर चला गया था।

वह चुपचाप चाय की प्यालियों को घूरती देख रही थी उन पर बना फ्यूजीयामा का चित्र। जैसे कि इन जापानियों का ज्वालामुखी एक दिन इनको निगल लेगा। और उनका स्वभाव उसकी चिन-गारियों और लावा से टक्कर खाता घमंडी और कठोर हो गया हो। अन्यथा इतना बड़प्पन साथ कैसे है? कुछ हो, क्या वह इसी देश के लिए पैदा हुई थी कि आज उसकी सीमा में चुपचाप पड़ी है। केप्टिन और उसके दो बच्चों के बाहर उसकी अपनी कोई जगह नहीं लगती। जीवन का यह साध्य लेकर उसने एक बड़ा अरसा वहीं काटा था। उसकी उमंगें थीं। कई उम्मीदें थीं। इरादे थे। लेकिन पाँच साल पहले और आज की दुनिया में भारी अन्तर आ गया है। वह उस भारीपन में खो गई है। खोकर ऐसी रल गई थी कि उसे अपने को पहचान लेने का बिलकुल खयाल न रहा—नहीं रहा। जो जरा अपनापन बाकी था, वह उन दो बच्चों के लिए बखेर दिया—जिनकी माँ कहला कर वह फूली नहीं समाई थी। उसके आगे इनसे बाहर निकल आने का सवाल कभी नहीं उठा। वह उनको अपने से लगा कर गहरी अनुभूति में डूब जाती है। अपने स्वामी के साथ रह, उसे जीवन में कोई कमी महसूस न होती थी। वह अपने में पूर्ण थी। उस पूर्णता में एक सुख था, आनन्द था और था उसके जीवन का एक......?

लगा कि वह प्यालों पर बना हुआ ज्वालामुखी उबल पड़ा है। उसका धुआँ सारे कमरे को ढ़कता हुआ, एक दिन समस्त दुनिया को ढ़क लेगा। उसका देश चीन उसके अधीन होगा। वह उस पर हुकूमत करेगा। प्रेम—प्रेम, देश --देश और विवाह—विवाह! एक सामाजिक विषय विवाह है। वह देश के आगे लागू नहीं। आज वह पिछले हफ्ते से देखती है, सुनती है कि उसका वह चीन जहाँ वह पली और खेली; अब वहीं तो नाश हो रहा है।

चीन............?

वह चौंक उठी।

उसने खाका देखा। दुनिया का बड़ा नक्शा। उस पर पीले पीले मुरझाये रङ्ग में पुता चीन का घेरा; उसमें छोटी-छोटी, घुमी-फिरी, मुड़ी रेखाएँ बनाती हुई बहती नदियाँ... ...।

पन्ना पलटा। वह बड़ी दिवाल। वह बड़े-बड़े शहर।—नानकिन...!

फिर, गिद्ध-से हवाई जहाजों की क्रूर दृष्टि.....। वह नीले-नीले समुद्र में बढ़ते पानी के जहाज.........।

"मुरीला!"

वह अस्त-व्यस्त उठी। सँभली, सँभल कर कैप्टिन को देखा। मन में बात उठी—इसी ने उसके जीवन की पवित्रता हर, अपने में लुभा, ठग कर, उसका देश छुड़ाया था। आज माँ बना, घर से बाहर जाने की गुञ्जायश नहीं रहने दी है। वह इतने अविश्वास के बाद क्या जवाब देती।

"मुरीला!" कैप्टिन फिर बोला।

मुरीला खड़ी थी—खड़ी रही। रूखी-फीकी आँखों से कैप्टिन को देखा। चाय की केतली मेज पर पड़ी की पड़ी थी। चाहा कि चाय बना कर पिला दे। हाथ बढ़ा कर केतली को छूना चाहती

थी कि देखा—'फ्यूजीयामा' को। उसका उठता धुआँ! पीड़ा मन में उठी। वह पी गई।

वह हट गई। उसकी परछाईं जैसे कि उस पर अपने घमंड का सिक्का जमा लेना चाहती हो। वह उनको चूर-चूर कर डालेगी। मिटा देगी। अब ज्यादा पास न रहने देगी। वह अपने देश का एक ऐसा 'प्रतीक' है, जो अपना मस्तक ऊपर उठा, सारी दुनिया को कुचल डालेगा जैसे वही रहेगा—इतने बड़े साम्राज्य का स्वामी। वही करेगा दुनिया पर हुकूमत..... !

वह उसमें समा सकती है। जब वह प्रेम के लिए अपना शरीर सौंप कर पत्नी कहला चुकी। जब अपने देश के नवयुवकों को ठुकरा कर एक विशाल बाहु वाले सिपाही को अपना गिन, उसी के साथ बँध चुकी; तब वही क्यों न उस धुएँ के बीच समाकर खो, अपनी निश्चिन्तता पा, चैन से सो जावे।

"मुरीला!" उसका स्वामी कहता हुआ पास आया। उसका हाथ अपने में ले बोला, "जल्दी चाय बना दे। मुझे जाना है।"

'जाना है।' मुरीला के हृदय से खेला। जाना ही है, तो चले जावें। वह क्या करे। उस पर अहसान क्या है। वह उनके जाने में बन्धन नहीं। क्या वह नहीं जानती कि उसका स्वामी कहाँ जा रहा है। वहाँ जा कर क्या करेगा!

कर्तव्य—कर्तव्य है ! मुरीला ने प्याले में चाय उड़ेलकर, चाय बनाई। केप्टिन ने चाय का प्याला उठाया। चुपचाप पीने लगा। मुरीला ने अपना प्याला लिया। उठती भाप में देखा—असहाय बच्चों को तड़पते, बड़ी-बड़ी गिरती इमारतें, असहाय अधमरे बच्चों की पुकार ..!

चाय की प्याली हाथ से छूट गई। सारी चाय फर्श पर बिखरी।

वह अनमनी हो उठी। उठी, तन कर खड़ी हुई। चुपचाप अपने कमरे की ओर बढ़ गई। दरवाजा बन्द किया। 'सनयातसेन' के पवित्र फोटो के नीचे बैठ कर, अपने देश के प्रति उठी भावनाओं को चुपचाप समेटने लगी।

इसी के नीचे एक दिन उसने देश के नवयुकों के आगे, देश को स्वतन्त्र करने की शपथ ली थी। इसी को मान्य स्वीकार कर आखिर तक ध्येय के लिए मर मिटने का वादा किया था। इसी को देश की प्रतिष्ठा समझ, उसने गुप्त समिति के आगे प्रण किया था कि वह सदा देश की होकर मरेगी। क्या सब ख्वाब था? सब तमाशा था! उसके कई साथी गोली से उड़ा दिए गए थे। कुछ आज भी जेलों में सड़ रहे हैं। दल टूट गया था। वही क्यों अपना कर्तव्य भूल गई थी। सरदार हमेशा कहता था—सुरीला, यह एक खेल नहीं। दल का सदस्य हो कर, उसकी इज्जत के लिए जीवन की बाजी लगानी पड़ती है।

तब वह मन ही मन गुनगुनाती थी—उसका देश है। वह देश के लिए मरेगी। खतम हो जावेगी। विवाह नहीं करेगी। आजीवन कुमारी रह कर देश का मान बढ़ावेगी।

सरदार का कहना था—सुरीला, तुम युवती हो। अपने को समझ लो। तुम अधिक नहीं सोच सकती हो। बात निभानी मुश्किल होती है।

यह सनयातसेन का फोटो सरदार ने उसे सौंपते हुए कहा था—इसकी इज्जत तुम्हारे हाथ है। जो सवाल आगे है, उसको हल कर लेने की व्यावस्था जरूरी है। हम अलग-अलग नहीं। हमारा एक धर्म है। हमारी एक ताकत है। एक बात हैं। हमारी यह एक तपस्या है। एक मर्यादा है। एक लगन है। हम एक हैं। एक ही रह जावेंगे। एक में मर मिटेंगे। हम उस स्वतन्त्र राष्ट्र के हैं, जिसे

चीन नवयुवकों की आवाज कह कर पुकारता है। जिनका मजहब गुलामी से देश को आजाद करना है।

उसी फोटो के आगे मस्तक झुका, आज वह चुपचाप अवाक, हारी बैठी थी। इसे पाकर एक दिन वह फूली न समाई थी। दल ने अपने खास चित्रकार से इसे बनवाया था। अपने कुछ गिने सदस्यों को ही यह दिया जाता था। वे इसे रख सकते थे।

केप्टिन, जो उसका स्वामी है। जिसके लिए वह अपना देश छोड़ कर जापानी शहर में पड़ी है। जो आज उसके भाग्य और जीवन का रखवाला बना है।

उस दिन.........। ठीक! वह सभा की जरूरी मीटिङ्ग से लौट रही थी कि केप्टिन ने उसकी कार रोकते हुए बन्दरगाह का रास्ता पूछा था! उस नए देश में रास्ता भूल जाने पर वह उससे मदद चाहता था। वह जहाज से उतर कर शहर घूमने निकला। इधर-उधर घूम-फिर कर, अपनी बुद्धि पर विश्वास न रहा। लाचारी में सहायता माँगी। चन्द बातें हुईं। धन्यवाद देता, अपना कार्ड मुरीला को सौंप कर वह चला गया था। लेकिन.........!

अगली सन्ध्या को मुरीला ने देखा, वह उसकी बड़ी दुकान के आगे अनजाने खड़ा था। मुरीला को दूर दूकान के भीतर बैठी देख कर वह अन्दर चला आया। फिर जरा संभला, व्यवहार व शिष्टाचार पर विचार कर अच्छा चाकू माँगा। खरीददारी से बाहर वह देख रहा था—मुरीला को, उसके पिता को। जो भीतर चुपचाप बैठे थे। वहाँ उसकी पहुँच न थी। फर्म में कई नौकर थे। एक उसको ओर बढ़, हुक्म बजा रहा था। चाकू उसने खरीदा। अपने को टिकाए रखना चाहता था। खरीददारी और उसके बीच मुरीला मार्फत थी। उसने चाकू खोला, वह खुल गया। आँखें चाकू के फन से अलग मुरीला पर लगी थीं। चाकू अचानक छिटक कर बन्द हुआ। हाथ

की उँगली पर घाव हुआ, खून बहने लगा। उसे इसकी परवा न थी। वह मुरीला को देख रहा था। देखता ही रह गया। देख कर दिल में रख लेने का एक हल्ला पास था।

चीख कर नौकरों ने ध्यान बँटाया। सब नौकर इकट्ठा हो गए। उसे घेर लिया। एक पानी लेने दौड़ा। मुरीला ने सुना। जान कर वह कितनी अनजान बनती। अपने बूढ़े पिता के साथ वह आगे आई।

केप्टिन की उँगली से खून बह रहा था। वह निश्चिन्त खड़ा था। मुरीला ने पिता से परिचय कराते कहा—'केप्टिन······'

पिता समझा कि ग्राहक परिचित है। फौरन् डाक्टर आया। दवा हुई। पट्टी बाँधी गई। सारी बातें मुरीला के आगे से ऐसी गुजरीं, कि यह छोटी सी घटना उसके मन पर अधिकार कर गई। फर्श पर पड़ी खून की बूँदें उसे केप्टिन की बहादुरी की गवाही देती लगीं। साथ ही सूझा—वह ईमानदार सिपाही है। वह भावुकता में बह गई। कुल परिस्थितियाँ ऐसी आईं कि वह उससे अपने को अलग न कर सकी। न उसे खयाल ही रहा और न उसने इसकी जरा फिक्र ही की। बात चली। कहीं रोड़ा न लगा, न कहीं चपेट पड़ी। वह न चाहती थी कि केप्टिन की इस अज्ञेय श्रद्धा को ठुकरा दे। वह सब के आगे उसे ज्यादा से ज्यादा परिचित सुझा, उसे लोगों की आँखों में पूरी जगह दिलाना चाहती थी। चाहती थी, जिस तरह उँगली कट जाने पर वह मस्तक ऊँचा किए खड़ा रहा, उसी तरह हमेशा रहे। उसे उसने अपने फर्म की सारी चीजें दिखलाईं और समझाईं। वह उसके बिलकुल निकट आ लगी। वह चाकू अभी तक केप्टिन के हाथ में था। फर्श पर लाल-लाल खून की बूँदें चमक रही थीं।

बात-बात में मुसकराती, हँसती हुई, वह केप्टिन से बातें कर रही थी। केप्टिन सुनता, जवाब क्या दे न सोच सकता था। यह

बात उसकी शिक्षा के बाहर थी। वह कभी जवाब पाने के लिए उसकी आँखों में आँखें गड़ा देती। कुछ जवाब न पा चुप रहती। केप्टिन ऐसी परिस्थितियों में अनजाने आ पड़ा था। उसे बाहर निकल भागने की उम्मीद न थी। वह मुरीला का खेल बना था। वह अपरिचित रमणी, जिसे पहली सुबह उसने दूर से देखा था, अब कितनी खिली थी। इस तरह, इतने विशाल फर्म में स्वागत करेगी, नहीं सोचा था।

मुरीला ने अपने पिता के नजदीक केप्टिन को बैठाया। कुछ देर खड़ी रह कर अन्दर चली गई थी। वहाँ नाश्ता ठीक सजवा कर नौकरानी के हाथ भेज दिया। उसने कपड़े बदले। एकाएक दिवाल घड़ी ने चार बजाए। वह चौंक उठी। मीटिंग में जाना जरूरी था। एक घण्टे की देरी लापरवाही से ही गई थी। वहाँ किसी जरूरी बात पर बहस थी। उसने फोन उठाया। नम्बरों पर उँगलियाँ चलीं। कुछ देर बाद सरदार की आवाज सुनी। भारी आवाज थी। सरदार बोला था—तुम्हारा इन्तजार काफी देर किया। प्रस्ताव पर तुम्हारी राय और दस्तखत चाहिएं। मैं तुम्हारे पास आ रहा हूँ।

मुरीला ने उलझन में जवाब दिया था—मैं खुद आ रही हूँ। बाग में मिलियेगा।

रिसीवर छोड़, कपड़े बदल कर वह बाहर आई थी। केप्टिन उसके पिता के साथ बातें करने में मशगूल था। वह अपने में मुस्कराती, चुपचाप आगे बढ़ी थी कि पिता की आँखों की पकड़ में आ गई। पिता ने पुकारा था, 'मुरीला?'

वह रुक पड़ी थी। लौट कर मेज के पास खड़े हो कर पूछा था, 'क्या है पापा?'

केप्टिन की आँखों ने उसकी आँखों में कुछ टटोला और हटालीं। सारी तश्तरियाँ अभी तक मेज पर वैसी ही पड़ी थीं, जैसे कि उसका

इन्तजार रही हो। वह असमञ्जस में पड़ गयी। ऐसी दुविधा आगे थी कि क्या करे—सूझ न पड़ा।

वह पिता से बोली थी, 'मुझे जरूरी काम से जाना है।'

चुपचाप बैठे केप्टिन ने फिर उसे देखा। देख कर अपनी आँखें हल्के मूँद, कुछ सोचने लगा। सोचा कि उसे बोलने का कुछ अधिकार है। यह असमर्थता ही थी।

पिता न चाहता था कि इतना परिचित ग्राहक कोरा टोला जावे। मुरीला को कुछ देर बैठने को कहा। केप्टिन का अनुरोध था। मुरीला बैठ गई। नाश्ता चालू हुआ। वह जिस बात में घिरी असहाय थी, उससे छुटकारे की कोई विधि न मिली।

काफी देर गुजर गई। केप्टिन बाहर बिदा ले रहा था। टैक्सी खड़ी थी। मुरीला चुपचाप उसे बिदा कर रही थी। उसका मन भारी था। आज की गलती उसे निम्न बना, निगलने को तैयार थी कि दल के एक आदमी ने आकर सलाम किया। वह चौंकी। उसने एक चिट्ठी दी। मुरीला चुपचाप अपनी कार पर बैठ गई। उस युवक ने कार मोड़ी आगे बढ़ा दी। मुरीला की समझ में कुछ नहीं आया। वह कुछ न जान सकी। कार बढ़ गई थी। वह बिलकुल थकी, घबराई थी। कोई बात मन में न टिकती। कई विचार आकर, एक-दूसरे को ढक लेते थे। मन भारी और उदास था। लगता कि कोई ऐसी बात होने वाली है कि वह हार जावेगी। कार आगे बढ़ रही थी। हार्न की आवाज के अलावा और कुछ सुनाई ही न पड़ता था।

वह सीढ़ियों से सभा वाले कमरे की ओर बढ़ी। एकाएक सब बैठे हुए लोग उठे। खड़े हुए। एक चिल्लाया—सरदार। सबने बारी-बारी से उसे सलाम किया।

मुरीला चौंकी। वह युवक कब से दल का सरदार बन गया था। पुराना सरदार कहाँ है। दो घण्टे में ही यह क्या हो गया है। सब लोग चुप क्यों हैं। अब क्या फैसला होने वाला है?

आज मुरीला को वही पुरानी जगह मिली थी। ऊँची मेज पर वह सरदार के पास बैठी थी।

बिलकुल सन्नाटा था। कार्यवाही शुरू हुई………।

एक आदमी उठा, बोला, 'मुरीला ने देश और दल को धोखा दिया। जापानी-सैनिक के प्रेम में सब कुछ भूल गई। मीटिंग में नहीं आई। सरदार से झूठ कहा। उसी की वजह से सरदार पकड़ गया। सरदार गोली से उड़ा दिया गया। दल के हरएक व्यक्ति को अधिकार है कि वह मुरीला के बारे में अपनी राय दे। अलग-अलग परचियों पर सब अपना फैसला लिखें। मुरीला को आजादी है कि वह अपने बचाव में जो कहना चाहे, कहे। किसी को एतराज नहीं।'

घबराई मुरीला खड़ी हुई थी। वह सरदार की मौत सुनने न आई थी। उसे मालूम न था कि आज की बात, जरा लापरवाही, इतना झगड़ा बढ़ा देगी। वह बोली थी, 'मुझे कुछ नहीं कहना है। अपना कसूर मान, सभा की आज्ञा मानने को तैयार हूँ।' कह कर बैठ गई थी।

कुछ देर के बाद सरदार ने सब परचियाँ पढ़, खड़े होकर कहा था, 'मुरीला को मौत की सजा दी जाती है। सारे दल ने एक मत से यह फैसला दिया है।'

सारी सभा में सन्नाटा छा गया। मुरीला उठी थी, कहा था, 'दल का हुक्म मान्य है।'

कुछ देर फिर सन्नाटा रहा। कोई कुछ नहीं बोला था। जैसे कि इतने बड़े फैसले के बाद, सब अपने में कुछ सोच लेने की फिक्र में हों।

सरदार खड़ा हुआ था। उसने अपनी जेब से एक लिफाफा निकाल, कागज उठा पढ़ा :—

'मुरीला को मैंने अपनी बहन की तरह चाहा है। दुनिया में इसकी भारी फिक्र मुझे थी। उसकी लापरवाही एक दिन नुकसान ला सकती है। फिर भी मैं चाहता हूँ कि मेरे पीछे उसकी रक्षा हो। मैं इतना कमजोर हूँ। अपने बाद नये सरदार से मैं प्रार्थना करूँगा कि वह उसकी रक्षा करे।'

सबने सुना। कोई कुछ नहीं बोला था। सरदार उठा, कहा था, 'मुरीला मुक्त है। अब सभा से उसका कोई सम्बन्ध नहीं। दल के हरएक सदस्य का कर्तव्य है कि वह मुरीला की समय-समय पर सहायता करे।'

सभा खतम हुई थी। एक-एक कर सब सदस्य चले गये। मुरीला चुपचाप ठगी सी बैठी की बैठी रही। जैसे कि और कोई फिक्र न हो। इतनी निश्चित कि उसके ऊपर एक भारी अहसान लाद, सब चले गए और वह लाचार थी।

सरदार पास आया, बोला, 'उठो बहन' मनुष्य अपना कर्तव्य निभाता है। समाज का एक दायरा है। दल के अपने नियम हैं। वह हर एक पर लागू नहीं। गिने चुने लोग जो चाहें, करें। तुम अपने मन में मैल जमा न करना। अपना-अपना उत्तरदायित्व है। सब उसे निभाते हैं। तुम अपना कर्तव्य पूरा करो। हमें अपना काम देखना है। इसके लिए दुखी होना, दुःख करना बेकार है। हम अपने पर व्यवस्था लागू करते हैं। वहीं चलते हैं। लेकिन ······!'

मुरीला सुन रही थी। सुनती रही। जैसे कि अब वह असहाय अबला हो। दुनिया ठुकरा कर चली गई, फिर भी कोई उसके नारित्व को जगाता, समझाता हुआ कहता लगा— उठ, उठ, उठ!

'उठो बहन।' सरदार फिर बोला था।

मुरीला सरदार के साथ अपने फर्म के पास उतरी। सरदार चला गया था। अब उसका सरदार और दल से सम्बन्ध टूट चुका था। वह बिलकुल अकेली खड़ी थी। ऐसी नीची सतह पर, जहाँ मात्र वही थी और उसकी निम्नता उसे निगलने खड़ी थी।

—अब उसी सरदार के सौंपे चित्र के आगे वह असहाय खड़ी थी। वह उसकी लापरवाही से पकड़ा गया था। गोली से उड़ा दिया गया। उसका आखिरी हुक्म मान कर किसी व्यक्ति ने उसे कुछ नहीं कहा था। सरदार की जान का मूल्य! वह मुरीला को किसी की आँख में असहाय नहीं छोड़ गया था। अब वह बल चाहती थी। सामर्थ चाहती थी। अपने को समूची फोटो के अर्पण कर—त्याग का एक नमूना पेश करने की फिक्र में थी।

केप्टिन कब कमरे में आया, मुरीला न भाँप सकी। वह चुपचाप अपने में ही बैठी थी। पास और दूरी का कोई सवाल न था। वह अपने में समाई थी। इधर-उधर कहीं कोई तकाजा न था।

केप्टिन ने कहा, "मुरीला!"

मुरीला की भीगी पलकें उठीं। केप्टिन की आँखों से मिलीं। झुक कर फिर नीचे हो गईं।

केप्टिन की समझ में कुछ नहीं आया। आज तक मुरीला को उसने कभी इतना गम्भीर न पाया था। मुरीला उसे हमेशा हँसती हुई मिलती थी। पति-पत्नी का रिश्ता सुचारु रूप से चालू था।

केप्टिन को ज्यादा फुर्सत न थी। उसे बातें करने का वक्त न था! उसने मुरीला की ठोड़ी उठायी। मुरीला को अपनी विशाल बाहों में समेटते हुए कहा, "मुरीला, मैं जा रहा हूँ। मुझे जाना है।"

मुरीला खड़ी हुई। खड़ी ही रही। कहीं उसके दिल में नारी की

सुकुमार भावनायें न उठ जावें। वह डरी नहीं। अपने पति की बातों से अलग थी।

"मैं जा रहा हूँ मुरीला। बच्चों को देखना। घर की देख-भाल करना। जल्दी लौट आऊँगा।

मुरीला कुछ नहीं बोली। केप्टिन चला गया था। कार 'स्टार्ट' होने की आवाज उसके कानों में पड़ी। वह चौंकी, सँभली। दौड़ी-दौड़ी बाहर खिड़की से सिर निकाल कर बोली, "केप्टिन! केप्टिन!!"

केप्टिन लौट आया। अपने प्रति उठती हुई भावनाओं को मुरीला ने हटाया। कमरे में गई, आलमारी खोली। बिस्कुट का डिब्बा निकाला, जल्दी बाहर आई। केप्टिन के पास सीढ़ियों में आकर बोली, "मैं अकेली नहीं रहना चाहती हूँ। तुम कहाँ जा रहे हो?"

"मुरीला... ...!" केप्टिन बोला।

"तुम जाओ, जाओ, जाओ!" मुरीला जोर से बोली। "अपना काम करो। मैं बाधा न बनूँगी। वहाँ मुझे भूल न जाना। सुबह मैंने बिस्कुट बनाए थे। मैं जानती थी, तुम जाओगे। यह लो... ...!"

केप्टिन चला गया। मुरीला अब सँभली। जैसे सारी अवहेलना हट गई हो। और वह बिलकुल खाली हो। अब कहीं कुछ सोचना-समझना बाकी नहीं था। वह 'अपने' को यही दे सकती थी। यही उसका बल था।

वह चुपचाप 'डाइनिङ्ग टेबुल' पर बैठ गई। वह सरदार, फोटो, बच्चे, और केप्टिन से घिरा छटपटाने लगी। छुटकारा मिलना सम्भव न था। देश की कहानी, अपना सवाल! सामने मेज पर पड़े अखबार में छपी मोटे-मोटे अक्षरों में चीन की खबरें—नानकिन पर धावा। जैसे कि सारी दुनिया का ठेका उस अखबार ने ले, उसे विद्रोह करने पर उतारू किया हो। वह जानती थी, उसका स्वामी एक दिन वहाँ जावेगा। अपने देश का सिक्का उस देश पर जमाने जावेगा।

लेकिन वह अपनी असहायता में क्या करती। एक दिन गलती भूल बन गयी थी। गलती आगे सुधरी नहीं। वह गलती में रह गयी।

दल ने उसे ठुकरा दिया था। सरदार की मौत ने परेशानी जोड़ दी थी। वह अकेली क्या करती। किससे कुछ कहती। किसे सब सुनाती। किससे पूछ, जवाब पा, मन हल्का कर लेती। उस रात्रि नींद न आई थी। एक छोटी घटना उसका जीवन पलट गई थी। बड़ी रात तक वह रोती रही। सुबह उठी। उसकी तबीयत ठीक न थी। उलझन साथ थी। केप्टिन आया था। उसे उसी संध्या को जहाज से चला जाना था। वह बहुत घबड़ा गई थी। पिता से बोली थी, 'पापा, मैं जापान जाऊँगी। मेरा जी यहाँ नहीं लगता है। कुछ दिन घूम-फिर कर चली आऊँगी।'

पिता क्या कहता। मुरीला बे-माँ की थी। पिता की सारी ममता अपने में बटोरे थी। पिता उसे समझदार गिनता था। वह उसकी कोई बात न टालता था। वह अपनी बात रखती थी। एक ऐसा स्वाभाविक हट उसमें था कि सबको मोह लेती। पिता चाहता था, मुरीला अब कहीं निश्चिन्त होकर रहे—स्वामी के साथ! मुरीला स्वतंत्र थी।

मुरीला ने सब सामान ठीक करवाया था। उसी सन्ध्या को नौक-रानी के साथ वह जापान चली गई थी। कुछ दिनों के बाद पिता को उसका पत्र मिला था कि वह केप्टिन से शादी करेगी। पिता राजी हो गया। मुरीला केप्टिन के साथ रह गई।

.........."माँ! माँ!!", कहते हुए छोटे बच्चे आए। और मुरीला को घेर कर बैठ गए। साथ में वे खिलौने लाए थे।

सुरीला ने देखे—खिलौने ! एक खिलौना—जापानी सिपाही चीन के सैनिक की छाती पर सङ्गीन भोंक रहा है।

मन ही मन वह बोली—घमण्डी देश के बच्चों, क्या यही तुम्हारी सभ्यता है ?

उसने खिलौना लिया और फेंक दिया।

बच्चे रो उठे। वह झुँझला कर दोनों के कान उमेठ, कहने लगी "अभागों, क्या इसीलिए अपना दूध पिला, पाल-पोस कर तुमको इतना बड़ा किया कि कल तुम चीन पर हुकूमत करो। उनकी सभ्यता को कुचल डालो।"

बच्चे चीख उठे। उसने अन्दर जाकर आलमारी से बिस्कुट निकाले। एक-एक बच्चे को देते हुए कहा, "तुम भी अपने पिता के पास रहना।"

बड़ी देर तक वह अवाक् कुछ सोचती ही रह गई। सँभली, बच्चों को खूब प्यार किया। कमरे में चली आयी। कमरा बन्द किया। सनयातसेन के फोटो के आगे मस्तक झुकाया।

बाहर बच्चे चीख रहे थे। वह सोच रही थी—दलवालों के हुक्म पर।

वह उठी। उसने मेज की दराज खोली। भरी 'पिस्टल' निकाली। पुकारा, "चीन, मैं विश्वास-घातिनी नहीं। मुझे माफ करना !"

अगली सुबह कैप्टिन का हवाई-जहाज नानकिन के ऊपर मँडरा रहा था। हुक्म मानने को वह तैयार था।

याद आया—यहीं सुरीला उसे मिली थी। नीचे दूरबीन से देखा; सुरीला के पिता का बड़ा फर्म !

याद आयी फिर, मुरीला......! बिस्कुट निकाले। एक खाया, दूसरा तीसरा, चौथा......!

एकाएक कुछ देर बाद जी मतलाने लगा। सारे बदन में जलन होने लगी। अब वह समझा कि ठीक, अपने देश के लिए उसे धोखा दिया। बेहोशी आने लगी थी। आँखें घूमती लगीं। उसने नीचे दुरबीन लगाई। फिर, फिर देखी—मुरीला के पिता के फर्म की ऊँची इमारत।

वह सँभला। पाँव से 'क्लक' दबाया। एकाएक कई गोले छूटे। अब चारों ओर धुआँ छा गया। पाँव स्थिर हो गए। हाथ काँपने लगे। 'हैंडिल' डगमगाने लगा। उसका सारा शरीर जल रहा था। वह एक ओर लुढ़क कर गिर पड़ा।

कुछ देर के बाद, लोगों ने देखा कि वही जहाज जो अभी तक अपने प्रभुत्व में इतरा रहा था, उस पर आग लग गई। वह नीचे गिर रहा था।

लाल ऊनी डोरा

"मुझे बाजार तक जाना है !"

"क्यों ?"

"कुछ जरूरी सामान लाने ।"

"क्या ?"

"हाथ का एक 'स्टेड' टूट गया है ।"

"साहब आदमी हो न । टर्नड-कफ कमीज, भला बिना "स्टेड" के कैसे जँचेगी । आज बड़े दिनों में तो आए ही हो । बिना खाए-पीए चले जाओगे, खूब रही !"

मैं चुपके मोढ़ा पर बैठ गया । अब वह कहने लगी, "जमाना खराब है । शौक से काम नहीं चलने का । चार पैसे घर से आते हैं फूँक-फाँक डालते हो । अपने उत्तरदायित्व पर कभी कुछ सोचा है ।"

"यह व्याख्यान सुनते-सुनते तंग आ गया हूँ । मुझे देरी हो रही है ।"

"कुछ देर ठहर जाओ । तुम्हारे दद्दा आने ही वाले हैं, फिर साथ-साथ खा लेना । साइकिल पर आए हो न ?"

"हाँ !"

"तो फिर कौन सी झंझट है ।"

"और बाजार तो कल भी खुलेगा, परसों, नरसों सही——यह क्यों नहीं कह दिया ।"

"ओ' 'स्टेड' पर गुस्सा उतार रहे हो । आज तो काम चल जावेगा । लो !" यह कहकर उसने बुनते हुए पुल ओवर से ऊन का एक टुकड़ा तोड़कर मुझे सौंप दिया ।"

उसे बाँधकर बोला मैं, "हिन्दुस्तानी साहब ठहरा!"

"कल लड़के हँसी उड़ावेंगे, तब क्या जवाब दोगे?"

"मुझसे सब डरते हैं। मैं मार-पीट करना जानता हूँ। कोई कुछ नहीं कह सकता है।"

लेकिन दद्दा नहीं आए थे।

वह लाल ऊनी डोरा उसी तरह बँधा अजीब सा लगता था। मैं इस भाभी की बातें टालना नहीं जानता हूँ। वह बहुत छानबीन के बाद मैंने पाई है। वह बार-बार जीवन में कई बातें सुलझा देती है।

ग्यारह के घंटे एक-एक करके बजते रहे। उनकी भारी आवाज चुपचाप कहीं अँधकार में खो गई।

अरुण ने आज असाधारण देरी न जाने क्यों लगाई थी।

अपने परिवार के भीतर से मैट्रिक पास कर जब कॉलेज में आया तो मन न लगता था। वहाँ दद्दा मिले और फिर यह भाभी। अपना अधिकार वह मुझे सौंपते नहीं चूकीं।

बारह बज गए थे। सारी दुनिया चुपचाप सो गई थी। अरुण नहीं लौटा था। वह अभी तक न जाने क्यों नहीं आया।

भाभी बार-बार खटका होते ही चौंक उठती। खिड़की के पास जाकर, बाहर देखती। निपट सुनसान था। कभी बीच में किसी कोठी के भीतर वाले व्यक्तियों और उनके धन की रखवाली करता, कोई चौकीदार चिल्ला उठता, "जागते रहो!"

आदमी की उस रक्षा वाले ज्ञान पर मन में हँसी आती थी। लेकिन भाभी स्थिर बैठी हुई थी। बार-बार एक गहरी उदासी उसके चेहरे पर छा जाती थी। फिर वह सावधानी से उठकर खिड़की के पास खड़ी हो, कुछ देर बाहर देखती रह जाती।

वक्त कटता रहा। एक बजा, दो, तीन और चार बज चुके थे।

एकाएक किसी ने दरवाजा खटखटाया, भाभी संभली, दरवाजे पर पहुँच, सावधानी से कुंडी खोली।

एक युवक भीतर आकर बोला, "जीजी!"

"क्या है रे?"

"वे गिरफ्तार हो गए हैं।"

"यह तो मैं समझ चुकी थी। कहाँ?"

"बाग के भीतर, 'समर हाउस' के पास।"

"कौन दद्दा?" अचरज में मेरे मुँह से छूटा।

वह मेरे मुँह की ओर देखने लगी। वह युवक चला गया। कुछ देर तक वह न जाने क्या सोचती रही फिर एकाएक बोली, 'हाँ विपिन वे अब कैदी हैं। तेरे दादा! जिनका इन्तजार हम अब तक करते रहे। अरे तेरा मुँह तो उतर गया है।"

अरुण पकड़ा जावेगा, भाभ। जैसे कि इस बात से निश्चित थी। लेकिन एकाएक मैंने देखा, भाभी जमीन पर धप्प से बैठ गईं। फिर मैंने पाया कि वह बेहोश हो गई है। उस व्यापार के बीच उलझन में पड़ गया। चारों ओर निपट सुनसान; कुछ बात समझ में नहीं आती थी। वह निडर और दृढ़ भाभी क्यों इतना दुःख बटोर रही थी; समझ नहीं पाया था। बड़ी देर के बाद उसने आँखें खोलीं। बोली, "पानी पिलाना विपिन, मेरा गला सूख रहा है।"

मैंने भाभी को पानी पिलाया। वह कुछ स्वस्थ लगी। आँखों की पलकें फिर भी भीजी थीं। आँखें सूजी थीं। वह बरवश आँसू रोकने की चेष्टा करती लगी, तो मैं बोला "भाभी!"

"हाँ विपिन तू क्या सोच रहा है। वे मुझे भी साथ ले जाते ठीक था। लेकिन मेरा यह सौभाग्य कहाँ है।"

देखा मैंने अँगेठी की आग ठंडी पड़ गई थी। चौके में खाने-पीने का सामान तितर-बितर पड़ा हुआ था। बाहर दरवाजा खुला

था। वहाँ से जनवरी की ठंडी हवा भीतर प्रवेश कर समूचे बदन पर कंपकंपी पैदा कर देती थी।

—आज अनायास पाँच साल बाद, उस लाल ऊनी डोरे की याद हो आई। हाथ का 'स्टेड' कहीं छिटक पड़ा था। उसे ढूँढ़ने सन्दूक टटोला, तभी वह डोरा मिल गया; उमा की यादगार! जो उसने उस पवित्र रात्रि को राखी सा मेरा हाथ पर बाँधा था। उस डोरे के साथ मैंने जीवन में अपना एक ध्येय तय कर लिया था। मैं हर तरह चाहता था कि उमा ने जिस सरल विश्वास के साथ वह नाता जीवन में सौंपा था, अपने उस कर्तव्य से कदापि विमुख नहीं हूँगा। जीवन में कठनाइयाँ आईं। घटनाओं के बीच नाजुक अवसर भी आए। जीवन-गुत्थियों और समस्याओं के बीच कई बार अपने को असहाय मैंने पाया। फिर उमा की याद मुझे सही रास्ता सुझाती थी। मैं निडर होकर कर्तव्य पर डट जाता।

उस अरुण को एक दिन पहचाना था। उस व्यक्ति में एक आकर्षण था। सीधा खद्दर का पहनावा, जबकि मैं पूरा साहब था। कालेज के लड़के उसकी हँसी उड़ाते कहते थे, बुद्धू है वह तो।

पर उस दिन पानी की झड़ी लगी थी। मैं चुपचाप हॉस्टल में अपने कमरे में बैठा चाय उड़ा रहा था। यार-दोस्तों का जमघट जुटा था। अरुण मेरे दरवाजे पर खड़ा होकर बोला—आपके पास छाता तो नहीं होगा, कल लौटाल दूँगा।

छाता मैंने दे दिया। वही पहली पहचान थी। रात्रि को मैंने सोचा कि वह अरुण आखिर मेरे पास ही क्यों आया। उसका यह कैसा विश्वास था। उस दिन के बाद अरुण सच ही मेरा दादा बन गया।

अरुण जब 'डिबेट' में बोलता सब दंग रह जाते थे। सारा कॉलेज धीरे-धीरे उस पर मुग्ध हो गया। मैं तो अपने को दादा को सौंप चुका था। फिर भी हम लोगों के बीच एक खाई थी। वे थे खद्दरधारी और

मैं विलायती। वे गरीब थे और मैं जमींदार का बेटा। दादा काश्तकारों का सुधार चाहते थे, उनका दर्दनाक हाल सुनाते। कभी तो मैं खीज कर कहता—दादा अपना यह सुधार रहने दो। पुराने जमाने के काश्तकार आज की तरह घमंडी नहीं थे।आज तो बात-बात पर दलील कर धमकी देते हैं।

दादा सुनकर चुप रहते, कहते फिर—तुम अपनी राय में सही हो। ये अपनी-अपनी धारणाएँ हैं।

मैं निरुत्तर हो जाता।

दादा ने अपने परिवार से भी मुझे परिचित करवा दिया था। वहाँ मुझे उमा भाभी मिली थीं। वह भाभी अक्सर दादा की बातें ही दुहराती थी। वही पक्ष जैसे कि सही हो। भाभी जो कहती वह मुझे मान्य था। स्वीकार था। एक दिन भाभी खद्दर और खादी बुनने वालों की समस्या और उनके रोजगार पर बोलने लगीं। उसने समझाया कि किस तरह पूँजीपतियों ने अपने स्वार्थ के लिए घरेलू कला-कौशल मिटा दिए। वह सब बात ऐसी सच लगी कि उसी संध्या को मैं खादी-भण्डार से ढेर सारी खादी ले आया। चौथे दिन सूट पहन कर कमरे में टहल रहा था कि दादा आ गए। आते ही बोले, "कहो नेता महाराज, आज यह क्या ठहराई है?"

"खद्दर हर एक को पहनना चाहिए।" मैं बोला।

तो वे समझाने लगे, "मैं कब मना करता हूँ। फिर भी अपने विचारों पर चलना चाहिए। यह बात अभी असुविधा की है। तुम स्वतंत्र नहीं। इतनी भावुकता गलत है। पिता सरकारी नौकरी करते हैं। उनका बेटा असहयोगी बनेगा! एक दिन मनिऑर्डर आने में देर हुई नहीं कि तार भेजा जाता है। घर वालों को धम "देते हो।"

दादा!"

अनिल की चिट्ठी एक बार और पढ़ी; कुछ जैसे कि उन लिखी बातों पर विश्वास नहीं होता था। मौत उस अनिल को कदापि नहीं आ सकती है। बहुत कुछ सोच कर उसने अनिल को एक चिट्ठी लिखी।

साँझ को कुछ खास बात नहीं हुई। रात को जमादार की बीबी के साथ बड़ी देर तक बातें करती-करती वह न जाने कब सो गई।

अगली सुबह उसकी नींद टूटी। वह बाहर आई। सोचा कि लौटने पर उनसे कहूँगी कि एक बार अनिल से मिलना चाहती हूँ। उसे कुछ तो सान्त्वना मिलेगी।

जेल के हाते में बड़ा हल्ला हो रहा था, उसकी समझ में कुछ नहीं आया। पति से वह यह अधिकार माँग लेने के लिए तत्पर थी। यह अनुरोध वे जरूर मान लेंगे, यही सहज विश्वास था। वह पति के आगे सारी बातें रख देगी। पति से परदा नहीं है। वह अनिल को ठीक-ठीक समझावेगी कि उसकी बातों पर कोई दुनिया में रुकावट अब नहीं डाल सकता है।

सुखराम आया था। चुपचाप सिर झुकाए खड़ा रहा, बहुत चिन्तित जैसे कि हो।

भारी भीड़वाला हल्ला भी भीतर अब सुनाई पड़ने लग गया था। तारा ने पूछा, "सुखराम यह क्या हो रहा है?"

"माँजी कल रात अनिल बाबू को फाँसी लग गई।"

"फाँसी!" उसने अवाक रह कर दुहराया।

"हम लोगों तक को मालूम नहीं हुआ। आधी रात गोरों की पलटन आई थी। सब इन्तजाम किया गया। उनकी लाश नदी के किनारे जलाने भेज दी गई। छोटे साहब साथ गए हैं।"

तारा ने सब बातें ठीक तरह सुनी या नहीं। समझ नहीं सकी कि बात क्या थी? यह सच था या सपना।

आगे अक्सर सौंप जाती हैं। वहीं बात हो गई। दादा को पाँच साल की सजा हुई थी।

—उस भाभी ऊमा को मैंने खूब-खूब पहचाना है। ऊमा स्कूल कभी नहीं गई। फिर भी घर के काम-काज में बहुत चतुर थी। सब कुछ काम निभा लेती। भइय्या के आगे सरल बनी रहती। जाड़े के दिनों चिप्पे लगी ठंडी धोती से गुजर कर लेती। शहर के भीतर एक गली में, पाँच रुपया माहवारी किराए के एक अँधेरे कमरे में गुजर होती है। कुछ कहो। "माँग लूँगी, भैय्या तुमसे लाज थोड़े ही है।" टाल देती थी।

वह ऊमा एक पहेली लगती। सुबह से साँझ तक काम पर जुटी रहेगी। मेहरी नहीं लगाई, खुद चौका बरतन करती। कुछ कहो हँसती, "अपना काम करने में शर्म क्या है?"

इसके बाद पति का दरजा ऊपर रख, हर तरह उनको सहारा बँधाती थी। ऐसी थी वह ऊमा! फिर भी उस रात्रि जब उसने सुनाकि दादा गिरफ्तार हो गए हैं, वह अपनी कमजोरी की वजह से बेहोश हो गई। जब होश आया तो अनजाने पूछ डाला, "वे नहीं आए।"

"क्या है भाभी!"

"मैं भूल गई, वे जेल चले गए हैं। बड़ा निष्ठुर है दुनिया का व्यवहार!"

"तुम तो डर जाती हो भाभी।" मैंने समझाया।

"अब विपिन भी सयाना हो गया है। अरे तुझसे उम्र में तो बड़ी हूँ।"

"तुम्हारा स्वास्थ ठीक नहीं है। तुम अम्मा के पास चली चलो भाभी। वहीं रहना।"

"और मुकदमे की पैरवी का इन्तजाम!"

—मुकदमा चला, रोज भाभी अदालत में घन्टों बैठी रहती थी। वकीलों की दलीलें सुनती। मैं सोचता भैय्या छूट जावेंगे। अच्छे-अच्छे बैरिष्टर पैरवी कर रखे थे। भाभी उन दिनों बहुत अनमनी रहती, बहुत कम बातें करती। फैसले के दिन वह चुपचाप खड़ी थी। एकाएक जज ने सुनाया, "अरुण—पाँच साल!"

भाभी पागल की तरह उँगलियों पर गिनने लगी—एक, दो, तीन चार और पाँच!

वह ठीक-ठीक बात नहीं समझ सकी पर उसे यह आशा बिलकुल नहीं थी। उसकी सारी उम्मीदों पर पानी फिर गया। बस वह दिल ही दिल में घुलने लगी। जितना ही उसे समझाता उतना ही वह दुःख बटोर लेती। कभी-कभी परेशान हो उठता कि दादा लौटकर क्या कहेंगे। चार महीने बाद एकाएक वह बीमार पड़ गई, फिर उसे बुखार रहने लगा। एक दिन रात्रि को उसने खून की कै कर डाली। मैं सब परिस्थितियाँ भाँप रहा था। डाक्टरों ने राय दी कि 'सेनेटोरियम' ले जाओ।

उस सेनेटोरियम की पहाड़ियों में मैं कभी तो उदभ्रान्त हो उठता था। भाभी अस्वस्थ-अस्वस्थ थी, मैं अक्सर घबरा जाता। एक भविष्य की ओर अनायास झाँकता तो काँप कर चुप तभी रह जाता था।

उस प्रातःकल को पहाड़ों में सूरज उदय हो चुका था। दूर-दूर खिड़की से चारों ओर हरियाली दीख पड़ती थी। एकाएक उमा ने आँखें खोलीं, पूछा, "वे आ गए?"

"तार तो दिया था। जवाब अभी नहीं आया है।"

"देखो झूठ तुम बोलते हो। उनको बुलवा दो।"

क्या मैं लिखता! उमा की हालत से डाक्टर निराश हो चुके थे।

"मैं अब बचूँगी नहीं।"

"डाक्टर तो कहते हैं—"

"विपिन वे झूठ बोलते हैं। तुझे ठग रहे हैं। मैं सच कह रही हूँ। वे नहीं आए, खैर विपिन तू अच्छी तरह रहना विपिन मेरा सिर उठा दे मैं बाहर देखूँगी। न जाने फिर कब इस दुनिया में जन्म लूँ।"

"भाभी……!"

"विपिन तू चुप क्यों हो गया है। तेरा तो यह एक इम्तहान है।"

"भाभी……!"

लेकिन एकाएक मैंने देखा कि भाभी के सारे चेहरे पर एक मुस्कान खेल रही है। वह चेहरा फिर मुरझा गया।

वह भाभी मर गई थी।

मैं चुपचाप खिड़की के पास खड़ा, बाहर ऊँचे-ऊँचे इकलिप्टिस के खड़े पेड़ों को देख रहा था। वह नीले आसमान को छूने के झूठे घमंड में इतरा रहे थे। सोचा मैंने कि यह सारा व्यवहार झूठा है।

अस्पताल की नर्स आई। उसने भाभी को टटोला, सांत्वना भरी दृष्टि से मुझे देख, चुपचाप सुफेद चादर उसे उढ़ा दी।

अस्पताल का छोटा डाक्टर अपना रजिस्टर ले आया। इंजेक्सन, दवा, आदि का सारा हिसाब-किताब समझा कर, अपने बाकी रुपए ले गया।

पास किसी कमरे में रिकार्ड बज रहा था। प्रभाती का वह सुन्दर राग चारों ओर फैल गया।

तभी जैसे चुपके कोई बोला—चौदह नम्बर वाली मर गई।

एक भारी फुस-फुस बाहर दालान में सुनाई दी। रिकार्ड उसी तरह बज रहा था।

एकाएक और कमरों की सुन्दरियाँ आईं। कुछ भाभी से स्नेह करती थीं। भाभी का चेहरा देख-देखकर चली गईं।

मौत किसी के लिए आशचर्य की बात नहीं लगी। मेहतरों का बूढ़ा जमादार बार-बार भीतर-बाहर आ जा रहा था। वह शायद

सोचता था कि मुर्दा बाहर निकले और वह अपना ख़ांदानी हक़ उसके कपड़े और बिस्तर उठा कर ले जाय।

ऊमा तो चुपचाप सोई लगी, जैसे कि इस सबसे उसे कोई सरोकार नहीं था।

बड़ा डाक्टर आया। मरने का सार्टिफिकेट दे, मुर्दा उठाकर ले जाने की इजाजत दे कर चला गया।

बढ़ई ने खट-खट-खट, तुन का सन्दूक बनाना शुरू कर दिया। बार-बार वह नाप लेकर अपनी कारीगरी की कुशलता दिखाना चाहता था।

भाभी उस सन्दूक पर सुला दी गई। सन्दूक बन्द हो गया। नौकर टैक्सी ले आया। चुपके मैंने वह सेनिटोरियम छोड़ा। मेरे हृदय में बेकली थी। अपनी तमाम आशाओं को मैं वहाँ लुटा आया था। मेरे दिल का घोंसला खाली हो गया था।

—हरिद्वार में गंगा के किनारे, मैंने उस सुहागिन बहन को सिन्दूर पहना, सदा के लिए विदा किया। दादा उस समय चक्की पीसते-पीसते अपने आदर्श और ध्येय पर विचार करते रहे होंगे। मजदूरों और मिल मालिकों का मसौदा तैयार करने में लगे होंगे। या क्रोपटकीन, लेनिन, कार्ल-मार्क्स के सिद्धान्तों की कसौटी पर स्वतंत्र भारत का स्वप्न देखने में तल्लीन होंगे।

बहिन ऊमा की वही एकमात्र निशानी, लाल ऊनी डोरा आज मैंने फिर बाँध लिया। वह ऊमा एक याद बना कर चली गई। अक्सर मैंने मौत पर सोचा है। आधी-आधी रात मौत की चमक पहचानने की कोशिश की। ऊमा का स्वर अक्सर सुना है। सोचता हूँ जब बहन ऊमा थी; तो भाई भी था। आज बहन नहीं फिर वह रिश्ता झूठा है। अपने को मैंने बिलकुल खाली सा पाया है।

ऊमा को हर जगह ढूँढ़ा, वह फिर मिली नहीं। तभी मैंने जाना कि मौत के बाद व्यक्ति लौटता नहीं है। अन्यथा ढूँढ़कर कहीं ऊमा जरूर मिल जाती। जीवन का एक पहलू जैसे कि यह डोरे वाला बन्धन हो, जिसे राखी सा बाँधकर वह मुझे जीवन-यात्रा में चलने लायक सफल व्यक्ति बना गई हो।

"बाबू जी ताँगा आ गया है?" नौकर आकर बोला।

ठीक, कल संध्या को अरुण जेल से छूट आया है। आज अब वह यहाँ पहुँच जावेगा। पाँच साल बाद हम फिर मिलेंगे। मैं कपड़े पहन कर तैयार हो गया। बाहर जाने को था कि याद आया—दद्दा आ रहे हैं, पर बहन ऊमा!

दद्दा नहीं जानते हैं कि······!

यह लाल ऊनी डोरा कभी-कभी जीवन-प्रतीक सा सम्मुख पड़ता है। उसमें लगता है ऊमा मुस्कराती कहती, 'क्यों विपिन, तू मुरझाया लगता है। जीवन तो घटनाओं का जाल है। बहादुर है तू तो!'

तब यह लाल ऊनी डोरा!

दादा जेल से छूट कर आ रहे हैं······।

केवल प्रेम ही

मेरा चरित्र नहीं। मैं आवारा हूँ। कल रात छः आने पैसे कर्ज लेकर, मैंने एक कुल्हड़ देशी शराब पी और भुना हुआ गोश्त खाया था। जिन्दगी छोटी है, यह जानकर किफायतशारी वाला ज्ञान नहीं रखता हूँ। यदि चार पैसे ही होंगे, तीन पैसे की चरस की पुड़िया और एक पैसे की सिगरेट की बत्ती लेकर, उसे भर, लाट साहब की तरह चहल-कदमी करता रहूँगा। मैं हर जगह गुजर कर लेता हूँ। सभ्य और भला आदमी तो हूँ ही। नौकरी, चोरी और भीख—आज आदमी की जिन्दगी को चालू रखने के लिए, यही तीन रास्ते हैं। फिर भी दुनिया मुझ पर शक करती है। मैंने हर एक को विश्वास दिलाया है कि मुझे नशा-पानी चाहिए। नौकरी नहीं है, न सही; मैं उनके शक का कोई निवारण फिर भी नहीं करना चाहता हूँ। मैं उनका हुक्म सुन लेने के लिए तैयार नहीं हूँ। मुझे उनसे सरोकार रखना उचित नहीं लगता है। दुनिया में रहने वाले सब आदमियों से मुझे नफरत हो गई है। वे आदमी की कीमत के कारण परवा करते हैं। अपाहिजों को सरकारी अस्पताल तक में जगह नहीं मिलती है। म्युनिसिपैलिटी वाले भिखमङ्गों को शहर की रक्षा के लिए, नगर के भीतर रखना खतरनाक समझते हैं। मैं तो हूँ अस्वस्थ—मन खराब है, शरीर पर झूरी लगी है; हर वक्त मन उचाट रहता है। जीवन के इस छोटे सफर से थक गया हूँ। सिर-दर्द, दिल में बेकरारी और शरीर का एक-एक अङ्ग चूर-चूर है। अपनी परेशानी को खिलौना समझ उससे खूब खेल लिया करता हूँ। हर एक इन्सान ने मुझे ठगा है। किसी से सहायता नहीं पाई। सब ने अपने मतलब को [illegible] होने के बाद मुझ से वास्ता रखना छोड़ दिया। मेरे विश्वास का बदला, इन्सान ने धोखे से दिया

है। तब मैंने सोचा कि सब व्यर्थ है। मुझे यह दुनिया एक दम नापन्द हो गई। वहाँ लाभ-हानि वाला तकाजा है। किन्तु प्यार हां किसी को किया होता। उसके श्रीचरणों के पास बैठ कर, चन्द महीने पड़ा रह कर स्वस्थ हो, दुनिया को मिटा डालने वाली शक्ति जरूर जमा कर लेता। पिछला सारा जीवन काला परदा है। मैं तो रेत के ऊपर-ऊपर चलता रहा। वहाँ चिह्न कहाँ कायम रहते हैं। आहट तक महसूस नहीं होती। वैसे लाखों इन्सान मिले और मैं कुछ को पहचानता हूँ। वे सिर्फ इन्सान हैं। इसके अलावा कुछ क्या कहा जा सकता है। उन इन्सानों की बड़ी-बड़ी भीड़ के बीच से गुजरा हूँ। उनकी कोई खास आवाज नहीं होती। भीड़ हल्ला करती है। उनकी राय कभी नहीं गिनी जाती है। वैसे इस दुनिया में कुछ लोग हैं। उनके पास पैसा है, मोटरें हैं, उनको कोठियों में रहने का शौक है। उनका रुतबा है, दरजा है; वे शरीफ कहलाए जाते हैं। उनका समाज में आदर है ही। इसको व्यर्थ एक विडम्बना नहीं माना जा सकेगा!

प्रेम अर्थहीन आज मुझे लगता है। वहाँ भी कीमत का प्रश्न है। दुनिया हमेशा से वस्तुवादी चली आई है। गढ़-गढ़ कर प्रेम स्थापित करना इन्सान चाहे, उसके हक में ठीक नहीं होगा। वैसे गुजरे जमाने में हर एक लड़की मुझे प्यारी लगती थी। मैं तब कहता था— लड़कियाँ प्यार कर लेने ही को पैदा की गई हैं। उनके बदन की गठन, उनके रहने का रङ्ग-ढङ्ग, लम्बे-लम्बे फैले हुए बाल, माथे पर टिकुली चिपकाने का रिवाज! चूड़ियाँ पहनेंगी, झाँवरियों से मीठी आवाज फैलेगी और सज-धज कर गुड़िया की तरह, इधर-उधर फुदका करेंगी। तब वे अच्छी लगती थीं। गुदगुदी दिल में पैदा करना उनका अधिकार था। एक मुस्कान और चितवन से आदमी को कैदी बना कर, पहरा देना वे जानती हैं। आज अब सोचता हूँ, वह सब एक झुंझलाहट थी। पानी में क्षार डालो, बुलबुले उठेंगे। फिर पानी

वैसा ही स्थिर हो जावेगा। वह प्रेम और प्यार, एक बदहजमी है। इस रोग से गुरदा खराब हो जाता है। तब प्रेम का रोग बार-बार पीड़ा पहुँचाने का आदी खुद ही बन जाता है। दोनों जीवन को बेकार बना देते हैं। किसी रोग का फैलना सुविधा नहीं है। लेकिन लड़कियों के नाम सुनकर 'कुतूहल' होने वाली अवस्था से गुजरा हूँ। तब दर्जनों नाम मुझे हिफ्ज रहा करते थे। आज टटोल कर किसी का खाका आँखों के आगे नहीं आता है। कभी सब की ओर एक नजर उठा कर देखता हूँ। वे सब लड़कियाँ जैसे कि आप सी अभी तक पड़ी-पड़ी यहीं दुनिया में सड़ रही हैं। किसी की अपने पति के साथ एक हैसियत जरूर हैं, अपना व्यक्तित्व कोई नहीं। तब बहुत हँसी आती है। आदमी हैसियत वाला जानवर है। कम से कम समाज के बनाने वाले पूर्ण बुद्धिवादी थे। वे आदमी का सिर नीचा नहीं करना चाहते होंगे। इसी लिए तो पुरुष नारी के ऊपर शासन करता है। यह उसकी जीत है। मुझे किसी से मतलब क्या? होगा कोई समाज! वहाँ इन्सान रहा करते होंगे। मेरे लिये उनका मूल्य कोई खास नहीं है। न मैं उनसे वास्ता रखने को लालायित ही हूँ। अब तो सबको पहचान लिया है।

किन्तु सरला का ख्याल था कि मैं शरीफ आदमी नहीं हूँ। नारी-कमजोरी को उठा कर, उसके शरीर से नाता रखना ही मेरा गुर है। इस सरला की बात का बार-बार फैसला करना चाहता हूँ। यह बात क्यों उसने सोची थी। मैं चाहता, सरला पास रह जाती। उसमें इन्कार करने की सामर्थ नहीं थी। चरित्र का कोई 'प्रमाण पत्र' उसके पास नहीं था। अपने सौन्दर्य का खूब प्रदर्शन करके, वह मोहल्ले-मोहल्ले में डोला करती थी। जैसे कि अपनी हिफाजत करना जानती हो। वैसे उसके दास्तानों की कोई कमी नहीं थी। रोज ही उसके बारे में कुछ-न-कुछ सुनाई देता। मैं उन किस्सों को सुनते-सुनते थक गया था। उसकी वह सजावट, नाज-नखरे... ...! अपना

कोई रिश्तेदार नहीं। एक बुढ़िया की ताई बना कर, वहीं डेरा जमाये थी। एक रईस के यहाँ बच्चा खिलाने की नौकरी की थी। मालकिन के नारी-सन्देह पर अधिक दिन वहाँ टिकी नहीं रही। उसके बाद और दो-तीन नौकरियों से वह निकाली जा चुकी थी। तब मैं पहले-पहले एक नौकरी पर उस शहर में गया था। रोजाना आफिस, साँझ को गपशप, कभी सिनेमा—दिन कट ही रहे थे। सुबह-साँझ होटल में खाना खाता। वहाँ रुचि की चीजें नहीं मिलती थीं। कच्ची रोटियाँ, गारे मीली दाल, ढेर सारी मिर्ची पड़ी तरकारियाँ। गुजर किसी तरह कर ही लेता था। मेरे कमरे के नीचे शराब की भट्टी थी। वहीं कभी-कभी मैं देखता था कि पियक्कड़ों की बड़ी भीड़ लगी रहती है। तब मेरा नौकरी का पहला अनुभव था। वहीं मैंने जाना था कि मजदूरी के कुछ पैसे देकर मनुष्य, मनुष्य के दिमाग को किस तरह खरीद लेना चाहता है। मैंने वहीं अविश्वास को पहचाना। मैं आत्म-गौरव भूल गया था। उस नौकरी के भीतर मैंने कभी नहीं जाना कि मैं आदमी हूँ। वहाँ अनुचित बरताव होता था। चापलूसी, मुसाहबी और ढेर-सारा धन्धा अपने ऊपर लागू करना पड़ता था। अफसर एक अँगरेज थे। उनका ख्याल था कि हिन्दुस्तानी न अनुशासन समझते हैं और न जानते। वह पास शुदा आई० सी० एस० नहीं थे। उनको वह रुतबा दिया गया था। दो हजार के करीब उनकी तनख्वाह थी। उनके बाद उस दफ्तर का अपना शासन था। हिन्दुस्तानी अफसर चार आसमान की बातें किया करते थे। नीली आँखों वाले अंगरेज से पैनी हिन्दुस्तानी अफसर की काली आँखें थीं। वे गालियाँ सुनाया करते थे। तब मैंने अनुमान लगाया था कि बुद्धिवादी बेकार दुनिया की आबादी बढ़ा रहे हैं। स्वार्थ ऊपर उठा कर, यह उनका अपना अनुचित त्याग है। वे साधारण मजदूरों की तरह विद्रोह नहीं कर सकते हैं। ये बुद्धिवादी अपने को मजदूर नहीं गिनेंगे। वे सुफेदपोश हैं! मजदूरों से ऊपर उनका अपना

अलग दरजा बनाया हुआ है। तब मैं सच ही उन बुद्धिवादियों की तरह नौकरी किया करता था।

एक दिन वह सरला अनायास आई थी। मैं सन्न रह गया। ऑफिस से लौट कर आया था। थका चारपाई पर लभरा अखबार पढ़ रहा था। तो मैंने देखा—काजल लगी आँखें, लम्बा चेहरा, माथे पर गोल लाल टिकुली और रङ्ग चिट्टा काला था। उम्र अठारह से अधिक नहीं लगाती थी। कोई कहता था कि वह विधवा है। किसी के साथ भाग आई है। दूसरों की आलोचना थी कि कच्चे चरित्र और चञ्चलता के कारण, पति ने सर्वदा के लिए छुट्टी दे दी है। उसने मेरी सारी उलझन हटाते हुए कहा था, "सुना, आपके यहाँ नौकरी है।"

"नौकरी ?"

"आपका नौकर भाग गया है न ?"

"वह बहुत पहले की बात है। आजकल धावे से इन्तजाम कर लिया है।"

"फिलहाल मुझे नौकरी दे दीजिए ?"

"लेकिन मुझे तो नौकर की कोई जरूरत नहीं है।"

उस अपवादी नारी को मैं अपने से दूर रखना चाहता था, इसीलिए मैंने उसे सावधान कराया था, "रखने में मुझे कोई एतराज नहीं होता, लेकिन मैं अकेला आदमी हूँ। बिना बीबी-बच्चों के घर में, तुम्हारा नौकरी करना अनुचित होगा।"

"यह मैं बखूबी जानती हूँ।"

"तब तो·········?"

"मुझे किसी का डर नहीं है। काम न करूँ, खाना कहाँ से आवेगा। इस तरह शहर में कै दिन रहूँगी। और दूसरा कोई

रास्ता मेरे पास नहीं है। मैं मरना नहीं चाहती हूँ। मौत से डर लगता है।"

"मैं किसी गृहस्थी में तुम्हारी नौकरी लगवा दूँगा।"

"वे लोग मुझे नहीं रख सकते।"

"क्यों?"

"मैं हर जगह बदनाम हूँ।"

"तो मैं क्या करूँ?"

"आप कुछ दिन नौकरी दे दीजिये। आगे मैं अपना रास्ता ढूँढ़ लूँगी। तब तक मुझे सोचने का मौका मिल जावेगा।"

"लेकिन यह नामुमकिन है।"

"नामुमकिन!" जैसे कि मेरी बात ने सरला को डस लिया था। उसका मुँह लाल हो आया। कुछ देर स्तब्ध खड़ी रह कर, तपाक से वह बोली, "और क्या मैं यह नहीं जानती हूँ कि आधी-आधी रात शहर से तवायफें आपके यहाँ आती हैं। मेरे चरित्र की व्याख्या......?"

कुछ हो, सरला आदमी को कड़वी बातें कह सकती है। मुझे यह सुनकर आश्चर्य नहीं हुआ। और मैं था ही क्या? जीवन की नैतिकता को एक अरसे से बिसार कर चुपचाप चलना जान गया था। मैं अपने भीतरी विद्रोह के लिये, उस व्यवस्था को अपने पर लागू करने को उतारू हुआ, जो सभ्यता के खिलाफ गिनी जाती है। मैं अक्सर थका-माँदा लौट कर देखा करता था कि शराब पीकर नीच श्रेणी के लोग, खूब मतवाले बनकर, उस भट्टी में नाचा करते हैं। तब क्या वे सब परेशानियों से बरी थे? मुझे वह भट्टी का मालिक, कभी-कभी एक पव्वा मसाले से बनी शराब, लेमन डाल, गिलास में भर कर भेज दिया करता था। वह सब पीकर मैं कब एकाएक स्वस्थ होता था? कई बार उससे दुःख बहुत बढ़ गया। अपने बहुत

दोस्त थे। उनके साथ न जाने कहाँ-कहाँ गन्दी-गन्दी गलियों में जाना पड़ता था। तब दिल की पीड़ा कभी कम नहीं हुई।

सरला के जवाब के आगे मैं क्या कह सकता था। अपने को मिटाने की चाहना रखने वाला व्यक्ति, हरएक बात से सावधान रहा करता है। अकारण, वह कारण बनना पसन्द नहीं करता है। और एक लड़की, जिसके चरित्र की आलोचना करना ही सबका काम है; उसके साथ बातें कर, भद्रश्रेणी वाले गृहस्थों की उदासीनता अपने पर लागू करनी अनुचित बात होती। यह चरित्र और उसका ढकोसला बहुत दिनों से चालू है। खास कर नारी जाति इससे अपने को ढक लेती है। उसकी दृष्टि में बाहरी चरित्र जरूरी है। सरला उस नारी-कोमलता के बाद, तभी उस सभ्य नारी दल की आँखों में उपेक्षणीय था। और नारी तो केवल एक पहेली है। कुछ कहेगी नहीं। सच्चाई बरतना जानती है। नाखुश होने पर, चोट-चोट करती जावेगी। जरा खुश होने पर पिघल, राख बन जाना उसका काम है। बीच समझौते वाला व्यवहार वह नहीं जानती। तब क्या किया जाय? यह सरला वही नारी ही थी। वह ताना मार कर, उपकार बरतना चाहती थी। अपना उसका चरित्र जैसे कि एक धौंस हो। अपने चरित्र को वह अधिक समझ लेने को तैयार नहीं है।

"क्या सोच रहे हैं?" सरला बोली थी।

"कुछ नहीं।"

"ताई घर में नहीं रहने देगी। दो हफ्ते से कुछ काम नहीं किया है। मोहल्ले की औरतें रात-दिन उसके कान भरा करती हैं। अब मेरा बिना नौकरी के काम नहीं चलता है।"

"तुम नौकरी ढूँढ़ लेना। मैं क्या करूँ!" कह कर, मैंने एक रुपया जमीन पर फेंक दिया था।

"क्या आखिर भीख भी माँगनी पड़ेगी!" वह आश्चर्य से बोली और मुझे देखती-देखती रह गयी थी।

"यह तो भीख नहीं है।"

"आपकी दया सही। है यह भीख! मैं इसे मंजूर नहीं कर सकती हूँ। अपना रास्ता खुद ही ढूँढ़ लूँगी।"

"क्या?"

"वह इस भीख से बुरा नहीं है।"

"क्या कहीं नौकरी मिल गई?"

"हाँ।"

"कहाँ।"

"ठेकेदार के पास......।"

"वहाँ!" सुन कर मैं दङ्ग रह गया।

"क्यों, आप मुझे क्या देख रहे हैं?"

"मैं!"

"इसमें हर्ज क्या है। जितनी बदनाम हूँ, उससे आगे और कोई दरजा तो है नहीं। न नेकनामी मुझे चाहिए।"

मैं तिलमिला उठा। जैसे कि सरला ने मुझे तेज चाँटा मारा हो। वह ठेकेदार, उसकी करतूतें, उसका कुरूप चेहरा......। क्या यह सचमुच वहाँ नौकरी स्वीकार करेगी। यदि जाना ही था तो मेरे पास नौकरी की फरियाद लेकर आने की क्या जरूरत थी? तब इस बात के बाद, दूसरों को परखना ठीक नहीं जँचता है।

"क्यों, आप तो चुप हो गये हैं। अभी पाँच रुपये का लोभ परसों उसका छोकरा दे गया है। उनके पास रुपया है। हरएक का उन पर विश्वास होना ही चाहिए। बड़े आदमियों को समाज बदचलन मान कर भी उनकी प्रतिष्ठा किया करता है। क्यों, आप तो मुझे देख रहे हैं! मैं अपना मूल्य जानती हूँ। यह आखिरी लोभ था।"

मैं चुप रहा। कितना ही नारी-मनोविज्ञान को जानूँ, उस पर सोचूँ, वह झगड़ा ही लगता है। इस सब के लिए, ढूँढ़ और छानबीन करने से कुछ फायदा नहीं होगा। आखिर दुनिया-भर के लोगों के जीवन में रुकावट डालने वाला मैं कौन हूँ। तो भी सरला के सारे जीवन को तोलने की ख्वाहिश उठी थी। ऐसी तेज लड़कियाँ दुनियाँ में क्यों पैदा हुआ करती हैं। समाज उनको ठीक-ठीक अवसर क्यों नहीं देता है। तब क्या वे सारी नारी जाति की कलङ्क हैं। उनका कौन-सा दरजा है। सरला सारे मोहल्ले वालों की जबान पर थी। हरएक घर की कुशल गृहिणी ने उसे अपने घर से अलग रखना चाहा। जैसे कि वह छूत की बीमारी हो। वह तो कहीं ऐसी नहीं लगती थी। वह सारा भेद-सा ही है। कहाँ वह पहले रहती थी? कैसे यहाँ आ गयी है! क्या वह विधवा ही है? सच ही उसके पति ने उसे त्याग तो नहीं दिया। हर एक बात में आदमी स्वयं शक पैदा किया करता है। वैसे सब देखते हैं, यह सरला अपनी झँवरियों को बजा-बजाकर चलती है। ख्वाह-म-ख्वाह उसने उन खोखली झँवरियों में इतनी कँकड़ियाँ भरवायी हैं कि तेज आवाज उठते-बैठते तक होती है। आस-पास की दीवारें उसे सुनकर काँप उठती हैं। सारे मोहल्ले में एक कुतूहल फैल जाता है। सब यह अन्दाज लगा लेते हैं कि कलमुही सरला, अपने मिजाज में फूली चली जा रही है। चटकीले-भड़कीले कपड़े पहनेगी। वही 'इमिटेशन' का पीतल वाला हार और सस्ते गहने पहनने का उसे खूब शौक है। इस सब के बाद, दुनिया यदि कहेगी, सरला छलना है—वह तीखी मुस्कान बखेरती चली जाती है। उसका मुकाबला करने वाली आदत से सब चिन्तित रहते हैं। फिर वह किसी से अधिक बातें नहीं करती है। सभ्य औरतें उसे घर में नहीं आने देती हैं। जब पति बाहर हो, उनको खास एतराज नहीं होता। उसकी रङ्गीन बातों को वे सुनना चाहती हैं। छेद-छेद कर उससे बहुत सारी बातें, उगलवा देंगी। अब सरला कहीं

बैठती नहीं है। वह उनकी नौकरी, गालियों व ईर्षा से बाज आ गई है।

"तो मैं जा रही हूँ।" सरला कह कर चली गई थी।

हतबुद्धि मैं बैठा का बैठा रह गया। तब क्या मैं उस सरला को रोकना चाहता था? नहीं, रोक कर क्या करता। मेरे यहाँ उसके लिए नौकरी नहीं थी। मैं उसे और किसी रूप में अपने घर में जगह नहीं दे सकता था। मैं शरीफ आदमी हूँ। वह चरित्रहीन लावारिस औरत थी। उसका कुछ आसरा और सहारा चाहे नहीं हो; अपना रास्ता फिर भी ढूँढ़ना जानती थी।

—आगे उस सरला के बारे में कुछ नहीं सुना। वह कहीं चली गई या मुहल्ले में ही है; सब जान लेने की मैंने कुछ खास परवा नहीं की। पहले एक-दो बार वह नजर पड़ी थी। उसकी वह भड़कीली सजावट देखता; पर वह रास्ता कतरा कर चली जाती थी। आफिस का रोजाना जीवन था। वही मनुष्य को पैसे से कुचलना। रोटी के पीछे आदमी को मोल ले लेना। वे आदमी आवाज कहाँ रखते हैं। मैं उनमें ही था। कई बार आधी-आधी रात नींद नहीं आई थी। भारी-भारी गहरी साँसें लेता था। उन साँसों से दिल का बोझ दब जाता था। कभी दिल में एक अज्ञेय पीड़ा उठती थी। उँगलियों से अपनी पसलियों को टटोल कर, मैं उस पीड़ा वाले बिन्दु को पा, खूब दबाता था। तब सोचता था कि मैं बहुत गलत आदमी हूँ। कोरी नैतिकता को लेकर, दुनिया में साधारण वस्तु की तरह पड़ा हूँ। मेरा उपयोग और क्या है? यदि मैं उस लड़की को साथ रख लेता क्या वह सही बात होती? या हमारी नैतिक कमजोरी बुराइयों की जड़ है। रूढ़ियों से प्रचलित बातों को हमने कानून की तरह मान लिया है। उस धर्म, भाग्य और भगवान का आसरा ताकते रहते हैं। भाग्य और भगवान तो बड़ी श्रेणी वालों ने साधारण श्रेणी वालों

को कुचल डालने का नैतिक-हथियार बनाया था। इसीलिए उनका ऊपरी हाथ रहा। गरीब उसी भाग्य और भगवान के सहारे पड़े रहते हैं। उस फूटे भाग्य और रूठे भगवान का ख्याल उनको हमेशा रहता है।

वह सरला यदि मेरी गृहस्थी में होती! वह शेखो वाली लड़की एक अच्छा दरजा बना सकती थी। वह ठीक-ठीक सावधानी से चलना जान गई थी। मैं उस बीती बात को अधिक उठाना नहीं चाहता हूँ। ये यादगारें तो परेशानी ही पैदा करती हैं। उस सब पर कितना विचार किया जाय!

—उस दिन साँझ को आफिस से लौटा था। मन बहुत खराब था। उस दफ्तर का सारा वातावरण बहुत जहरीला था। वे अफसरान मनुष्य का विश्वास न कर, पैसे से मनुष्य की कीमत आँकते थे। तभी होटल वाले का नौकर एक गिलास मसाले की शराब, लेमन मिला कर ले आया था। वह तीखी शराब पीने में अच्छी नहीं लगती है, फिर भी लाचारी में आदमी क्या करे? वह तो बोला, "आपने सरला के बारे में सुना?"

"कौन सरला?"

"वही, जो यहाँ रहा करती थी?"

"क्यों! क्या हो गया है!",

"बच्चे को मारने के अपराध में पकड़ी गई।"

"किसका बच्चा?"

"उसीका, नाजायज......!"

"सरला का बच्चा?"

"वह तो हमेशा से ही बदचलन रही है।"

नौकर चला गया था। मैं चुप रहा। मैंने मनुष्य, उसकी सभ्यता, समाज, धर्म और कानून; सब पर विचार किया। कुछ निर्धारित

नहीं कर सका। तब सरला के बच्चा हुआ। उसने समाज के भय से उसे मार डाला। यह डर क्यों उठा था? वह लड़की घबरा क्यों गई थी?

—न जाने कितने साल गुजर गए हैं। मैं वह शहर और नौकरी छोड़ चुका हूँ। सरला को कानून ने चार साल की सजा दी थी। एक सभ्य नागरिक की तरह कानून के खिलाफ मैं कुछ नहीं कह सकता हूँ। वह अब हमारे अधिकार की बात नहीं है। सरला की याद कभी-कभी अनायास जीवन में आती है। आखिर सरला ने नारी-शरीर का सहारा पकड़ा था। यह कैसा उपयोग है? लेकिन भीख से उसने वह पसन्द किया। यह क्या नैतिक डकैती थी? डकैती, भीख माँगने से बुरी नहीं। मैं उस सरला को कितना ही भूल जाना चाहता हूँ, वह मेरे आगे बार-बार खड़ी हो जाती है। क्या यह मेरा भ्रम है; या मैंने सरला को प्यार किया था?

देश की बात

तेरा सवाल सही है रञ्जन ; जिस आदर और अधिकार को लेकर तूने यह सवाल किया, उसका मैं अनुग्रहीत हूँ।"

"रामू ठीक बात मैंने कही है। पढ़-लिख कर तुमने एम० ए० पास किया है। फिर भी निपट लापरवा आज हो। नहीं तो... ...।"

"ओ रञ्जन!"

"बहुत पीड़ा हो रही है क्या? बच गये। मौत का कोई ठौर और ठिकाना थोड़े ही होता है। किसी डॉक्टर को बुला लाऊँ।"

"नहीं पीड़ा है जरूर, लेकिन ज्यादा उसका ख्याल नहीं। बाकी अब मिट जावेगी। गोली आर-पार हुई और कोई डर की बात नहीं। कल घाव को देख लिया जायगा। इस असमय में बेकार चेष्टा कर, लोगों का संदेह व्यर्थ क्यों जगाया जाय।"

"फिर भी।"

रामू चुप हो रहा। उधर चूहों के चूँ-चूँ-चूँ ने ध्यान को बाँट लिया।

—छोटा सा एक कमरा। कुछ खास सामान नहीं। खुली आलमारी पर कूड़ा-करकट भरा था। इधर-उधर फर्श पर कागज के टुकड़े धूल की भारी तह के ऊपर फैले हुए थे। अस्तित्वहीन कमरे के भीतर 'डिज' की लालटेन की मैली रोशनी हो रही थी। एक टूटे मोढ़े पर रञ्जन बैठा, चारपाई पर लेटे रामू के चेहरे को पढ़ रहा था। रामू का चेहरा बिल्कुल सफेद, आँखें पैनी, किन्तु बुझी हुई। निर्जीवता सारे शरीर पर फैल रही थी।

"रामू !"

"क्या है रज्जन ?"

"क्यों सुस्ती आ रही है ? जाकर डॉक्टर को बुला ही लाता हूँ। बड़ी देर में तो अभी तुमको होश आया है। दिल डूब तो नहीं रहा है ? इस लाचारी में मुझे आज्ञा दे दो। तुम्हारी यह पीड़ा, वह उतना बहा खून, रामू......!"

रामू चुप।

"रामू दादा !"

रामू आँखें मूँदे, थका, सुस्त पड़ा था।

"तुमको क्या हो रहा है रामू ?"

रामू ने आँखें खोल लीं, बोला, "तू तो ऐसे ही घबड़ा जाता है—बेकार !"

"बेकार का यह सवाल नहीं। थोड़ी बरांडी पी लो।"

और रज्जन उठ कर एक गिलास में ले आया। रामू ने पी, कुछ स्वस्थ लगा। गिलास एक ओर रख कर लेट गया। रज्जन ने मेज पर पड़ा अखबार उठाया। पढ़ने की कोशिश की। मन में भारी उच्चाट था। वहीं रख दिया। अब रामू के चेहरे को खूब देखता ही रहा। उसे कुछ कहना नहीं था। पूछने वाला तकाजा निरर्थक हो गया। उसकी आँखें, रामू के चेहरे पर ही स्थिर रह गईं।

मैं इस घटना को सारी जानता था," रामू बोला।

"फिर भी सावधान ...।"

"कौन सा हथियार मेरे पास था ?"

"क्या !" असमंजस में रज्जन बोला। उसकी आँखें मेज पर धरी 'पिस्टल' की ओर फिरीं।

रामू समझ गया। कहा, "शायद तू नहीं जानता कि केशव का जीवन मुझे सौंपा जा चुका है। उस कर्तव्य के भीतर अपनत्व तो

है ही। उसकी हत्या मैं नहीं कर सकता। क्या इसी के लिये भाभी ने उससे कॉलेज छुड़वाया और मेरे आगे ला कर, दल के सुपुर्द किया था।"।

"लेकिन कर्तव्य के आगे।"

"केशव इस अविश्वास को खूब समझता है। सावित्री को भी उसने मेरा खून करने को उकसाया था।"

"सावित्री को!"

"वह दुबली पतली लड़की उसके बहकाने में आ गई। अपनी भावुकता की वजह से वह केशव का आदर करना जानती है। समझती है कि सारे झगड़े की जड़ मैं ही हूँ। केशव का छुटकारा तो हो नहीं सकता है। बिना मुक्ति पाये सावित्री क्या करे? वह इस संभव को जानती है।"

"और केशव?"

"केशव का चरित्र नहीं। तुमने नहीं देखा कि वह हरएक बात पर अपने को कितना बचा कर चलता है। एक दिन मैंने उसे बुलवाया था। अकेले मैं और वह ही थे। मैंने कहा था :—

'सावित्री के बारे में क्या सुन रहा हूँ?'

'किसी की व्यक्तिगत बातों में आप दखल क्यों देते हैं?'

'यह व्यक्ति का प्रश्न नहीं; दल का है।'

'मैं उसका सदस्य नहीं। जहाँ बन्धन है, वह मान्य मुझे कब था!'

'जानते हो केशव, यदि अनाधिकार चेष्टा करोगे तो दल की मर्यादा के आगे......।'

'खून और हत्या ही तो तुमको करनी है। अस्वस्थ दिमाग और क्या सोच सकते हैं। व्यक्तित्व की ईकाई में रल जाने वाला डर मुझे नहीं। ऐसे भय की उपेक्षा करना ही सीखा हूँ।'

'केशव, संकुचित आकर्षण पाकर, धन्य होना ठीक बात न होगी।'

'जानता हूँ, जानता हूँ मैं; इन सब धमकियों के बाद भी सावित्री को मुझे अपने में जगह देनी है। उसके लिये सब इन्कार सह सकता हूँ। लेकिन कथित-मिथ्या पाकर वह सब मिटाना मुझे नहीं है। सावित्री केवल पेन्सिल से लिखा नाम तो है नहीं कि रबड़ से मिट जावे। दबाव का यह सब शस्त्र... ...!'

'केशव, भाभी एक दिन तुमको... ...।'

'यही न, तुम हत्यारों के हाथ सौंप गई थी।'

'तुम्हारा अपना उत्तरादायित्व ?'

'वह सब मैं अच्छी तरह जानता हूँ। परवा मुझे है। किन्तु सावित्री के बाहर वाला अधिकार लेकर चलना मुझे नहीं है!'

'संस्था के कायदे को तोड़ना, संस्था का अपमान करना है।'

'यह सब ढोंग अपने पास सँवारे रहो। मैं निश्चिन्त हूँ। सावित्री 'जापानी डॉल' नहीं है कि आप लोगों के गुस्से की चिंगारी से भस्म हो जाय।'

"यह कह कर केशव चला गया था।"

"तब भी उसके विरुद्ध तुमने किसी से कुछ नहीं कहा।"

"तू क्या नहीं जानता रञ्जन, भाभी को आदर्श मैंने माना है।' अपनी सारी जिम्मेदारियों के बाद थक जाने पर, वही तो साहस बढ़ाती है। उसकी चिप्पे लगी साड़ियों को देख कर मुझे अपने फटे कपड़ों पर निम्नता नहीं घेरती। पति के पकड़े जाने पर भी उसके चेहरे पर उदासी नहीं आई। वह अपने जीवन को आकांक्षा और मीमांसाहीन पाकर, अपने को संभाले हुए है। अपनी सारी गृहस्थी को भरे उत्साह से चला रही है। सारी भयानक व्यवस्था को जान कर भी कब उसने पति को रोका। स्वयं एक सामर्थ्य है। उसकी जब सावित्री से तुलना करता हूँ... ...।"

"यह कैसा मुकाबला होगा ?"

"केशव ने मेरे पास से जाकर सावित्री को उकसाया था। एक दिन दोपहर को मैं भाभी के कमरे में खा-पी कर आँखें अधमूँदी किए लेटा था। तभी सावित्री उस कमरे में आई। जान कर मैं अनजान बना लेटा ही रहा। उसकी दृष्टि से बचना चाहता था। डर लगा कि कहीं उसके आँसुओं में पिघल न जाऊँ।

"हल्की एक आहट हुई। कोई पास आया। सिरहाने के नीचे हाथ डालकर उसने पिस्टल निकाल ली। स्टील का ठंडापन मुझे अपने माथे पर महसूस हुआ। मैंने भीतर उठते हुए हल्ले को दबाया। चुप ही रहा। आगे जीवित रहने का सन्देह उठा। उपाय फिर भी नहीं सोचा। पड़ा रहा—वैसे ही—वैसे ही। सोचा कि यदि केशव चाहता यही सावित्री एक शक्ति होती। वह किसी तरह ठीक राह पकड़ती, उचित होता। अपनी मौत पहचान कर भी, अलावा सावित्री के लिए मन में मैल जमा नहीं हुआ। यह तो जानता हूँ कि आदमी मिट जावे, उसका व्यक्तित्व नहीं मिटाता है। पिस्टल हट गई थी। कान भारी एक गूञ्ज सुनने को तैयार थे। कुछ नहीं हुआ। सन्नाटा था। मैं न जाने कितनी देर इन्तजार ही करता रह गया। फिर हल्की आहट हुई। दरवाजा खुला और बन्द होने की आवाज मैंने सुनी। आँखें खोलीं। पिस्टल वहीं तकिये के पास धरी थी। सावित्री चली गई थी।"

"भाभी यह बात जानती है।"

"नहीं।"

"केशव ?"

"उसके बारे में क्या कह सकता हूँ। सावित्री ही जाने। वह अपने हृदय की कोमलता को ढक लेने वाला आदर सँवार कर चली गई थी। अब वह आज अवहेलना सी खड़ी है। इस भारी

हार के बाद वह चूक गई होगी। पानी होगा ? प्यास भारी लग रही है।"

रज्जन ने गिलास में सुराही से पानी भरा और पिलाने लगा। बोला, "बहुत थक गए। खून बहुत निकला है। हो तुम बहादुर।"

"क्या करता मैं ? पहले आँखों के आगे भारी अँधेरा छा गया। न जाने फिर कब तक वहाँ पड़ा रहा। जब होश आया तो दौड़-दौड़ा यहाँ पहुँचा। हड़बड़ी में साइकिल वहीं छूट गई है।"

"क्या फिर होगा ?"

"कोई पा लेगा। रज्जन, बड़ा ही नाजुक वक्त है। देश की हालत ठीक नहीं। समस्या जटिल होती जा रही है। रोटी और पेट तक के लिए पैसा चाहिए। चन्द नोट, आदमी के दिमाग और उसके व्यक्तित्व को ढँक लेने की क्षमता रखते हैं। वह पैसा एक दर्जे के आदमी के पास है। उसका उपयोग, हमारा शारीरिक और मानसिक बल मोल ले लेना है।"

"इस पहलू का चित्र पाकर रामू......।"

"विकार बढ़ता ही तो जा रहा है। जनता तो घास का सूखा पूला होता है। वहाँ वातावरण बना कर चिंगारी सुलगाने के लिए दिमाग चाहिए। वे दिमाग शहरों के गली-कूचों में आवारागर्दी करते फिरते हैं। उनके रहने की ठीक व्यवस्था नहीं। और न खाने की है। सरकार इस ओर अपने को लाचार साबित कर लापरवाही ठाने हुए है। 'स्कीमों' पर दलील कर बिल ही तो वे बनाते हैं। जानता है, यह सारी 'सिक्रेटेरियट' की इमारतें क्या हैं ?"

"क्या हैं वह ?"

"देश पर हुकूमत करने वाले ढाँचे; जहाँ आई० सी० एस० वाले मोटी-मोटी फाइलों के द्वारा, हमारे भाग्य का फैसला किया करते हैं।"

"फिर उपाय ?"

"राष्ट्र एक बन तो रहा है - भूखों और आवारों का ! फिर विद्रोह आदमी के भीतर सुलग चुका है। हर एक आदमी का दिमाग 'डाइनामाइट' की तरह तैयार है। पढ़े-लिखे मजदूर दिमाग को समझा कर ही चुप नहीं रह सकेंगे। सभ्य वे हैं। उनका भी तो कुछ इन्तजाम होना चाहिए। फिर उसके पीछे शहरों के मजदूर और देहाती किसानों का संगठित बल होगा।"

"सरकार क्या करे ?"

अपनीअ,, समर्थता की दलील ही तो वह करती है। यही है उसका बल ; किन्तु जो कभी बेकार और भूखा नहीं रहा, वह यह गुण नहीं समझ सकता है। एक भारी आडम्बर से चाहे बात को कितना हो ढक लिया जावे, खोखलापन तो हटने का नहीं है। गली-कूचों में पड़े वे दिमाग एक दिन अपने लिए आखिर रास्ता निकाल ही लेवेंगे।"

"रामू कैसे ?"

"पैसा जमा करने की ठहराकर, उसे दुनिया के बीच फैला देवेंगे। मजदूर की सही पहचान उस फैले हुए पैसे से होगी। चुप कब तक वे रहें। यह तो एक नैतिक अपराध है उनका।"

"बात कुछ भी तो समझ में नहीं आती है।"

जमीन तैयार है। एक दिन गली-कूचे की गन्दी-गन्दी गलियों में पड़े रहने वाले दिमागों का एक दल, चुपके-चुपके आ, लूट-मार मचा देवेगा। कोई और चारा उनके आगे नहीं है। व्यवसाय बनाकर जीवन चलाने में तब उनको सहूलियत हो जावेगी। इस कठोर सत्य को कब तक ठुकराया जावेगा।"

यह कह रामू चुप हो गया। वह बहुत थक गया था। हाँफने लगा। फिर गहरी निराशापूर्ण साँस लेकर निर्जीव पड़ा रहा। रञ्जन इस रामू को जानता है। उसे खूब पहचान गया है। एक अरसे से

इसका साथ दिया है। प्रायमरी स्कूल से यूनिवर्सिटी तक नजदीक से पढ़ा और आज साथ है। कुछ और कई पिछली बातें याद आती हैं। आज की जिन्दगी में उनसे कोई सरोकार नहीं है। आज रामू की बात में तत्व है, पहले कब था ?

"पानी दे रज्जन।" रामू ने आँखें खोलीं। वह सारा चेहरा जैसे कि बुझ जावेगा। रज्जन घबड़ा उठा। पानी पिला कर बोला, "रामू तुम तो......।"

"बस हिम्मत हार गया। अभी न जाने कितने सवाल हल करने को पड़े हैं। शायद वह सब तुझे सौंप जाऊँ। निर्भीक होकर निभना ही तो तेरा काम है। हर एक देश के शासन को सुलझाने वाली चाभी एक विद्रोही दल रखता है। उसी के भरोसे सरकारें चौकन्नी रहती हैं। नहीं तो बुराई फैलाने वाले जन्तु दुनिया को कभी के ढक लेते। उनका इलाज मौजूद रहता है।"

"नहीं रामू, हम तो तुम्हारे व्यक्तित्व की ओट में......।"

"छी-छी रज्जन! इसीलिए क्या आज तक तेरा भरोसा किया कि आज आखिर तू अपने को कमजोर साबित करे। दल की उपेक्षा वाला कोई नियम क्या लागू हो सकता है।"

"माफ कर दो मुझे।"

"क्या जरूरत है इसकी; तू तो सबल है। भाभी को ही न देख ले। जानती है कि लौट करके वे नहीं आवेंगे। साम्राज्यवाद की नींव के नीचे फाँसी उनको लग जावेगी। फिर भी वह अपनी गृहस्थी में पड़ी है। अपना वही उसका घर है। उसके प्रति अपने को बलवान वह साबित किये है। वह दिन मुझे याद है। बड़ी रात लौट कर आया था। उनको फाँसी का हुक्म हुआ, यह सुन कर भाभी को धीरज बँधाना मुझे था; किन्तु पहुँच कर देखा भाभी मलिन बैठी थी। उसका बच्चा निर्जीव एक ओर मरा पड़ा था। अचरज में मैं बोला था—भाभी!

"भाभी चुप थी। एक बार आँखें ऊपर उठीं, आँसू बह निकले। वह बच्चा एकाएक साँझ को बीमार पड़ा था। दवा वगैरह का इन्तजाम कौन करता! भाभी अकेली थी। पहले बच्चे के पेट में दर्द उठा, फिर कै उसे हुईं। आखिर वह चूक गया।

"लाचार मैं खड़ा ही था। क्या करता। कुछ समझ में थोड़े ही आया था। मैंने भाभी के आँसू कब देखे थे। भारी दुःख पड़ने पर जब हम बहुत थक जाया करते थे, वही तो हमें हिम्मत बँधाती थी। तभी केशव दौड़ा-दौड़ा आया बोला, 'पुलीस आ रही है तलाशी लेगी।'

"और भाभी उठ कर बोली, 'भाग जा!'

"अवाक मैं खड़ा का खड़ा ही रहा। कभी भाभी को देखता, तो फिर उस बच्चे को। कि भाभी ने कहा, 'क्या देख रहा है रामू। जा, यह तो रोज लगा है। दुःख पाकर ही तो चलना सीख रही हूँ। तू जा --जा! यहाँ का धन्धा मैं सँभाल लूँगी।'

'लेकिन!'

'जिन्दगी को एक ठिकाना मानती आई हूँ। घर से बाहर निकलने की तो हमको मनादी है। छी, रोता है। जल्दी चला जा।'

'इस समय ही।'

'काम पहचानना चाहिए। जा अब। क्या सुनाने आया था। मैं सुन चुकी। केशव ने तो खबरें बटोरना बचपन से ही सीखा है। कभी ज्ञान इसे थोड़े ही आवेगा। अब वक्त नहीं। तू जा।'

"और मैं चला आया था। तब से अक्सर सोचता हूँ, कि ऐसे ही सबल गृहस्थ कई मिल जावें, तब जीवन को निपट जाने में सहूलियत हो जावेगी। इस तरह के गृहस्थ देश में फैल जावें, तो बेचैनी लुट जावेगी; कुछ स्थिरता चाहिए। आदमी अपने ही बल पर कहाँ खड़ा हो सकता है। व्यर्थ और ढोंग वह सब होगा। लेकिन

आज हमारे आगे गृहस्थों का प्रश्न कहाँ है ? काफी कटु अनुभवों के बाद, युवक अपने को असमर्थ पाता है। अच्छे गृहस्थों का निर्माण करना, एक भारी जिम्मेदारी को निभा लेना ही है।"

"फिर केशव और सावित्री ?"

"सावित्री जानती है कि केशव से आजीवन नहीं निभ सकती है। वह फिर भी उसके साथ हमेशा रहना चाहती है। अपने कर्तव्य को ठीक मान कर पकड़े हुए हैं। लेकिन केशव इस सावित्री को छोड़ सकता है। नारी का एक मात्र लुभावना अंग और आकर्षण उसे पसन्द है। सावित्री के हृदय के नारित्व की चाहना उसे नहीं। अन्यथा सावित्री और उसका किस्सा इतना नहीं फैलता। सारी करतूत केशव की ही तो है।"

खट, खट, खट ! किसी ने दरवाजा खटखटाया। रज्जन चौंक उठा। रामू चुपके बोला, "पुलीस आ गई। तू भाग जा। पिछवाड़े दीवाल के सहारे चढ़ कर, छत ही छत चला जाना। तीसरी छत से लगा, बड़ा पीपल का पेड़ है। उसी पर चढ़, छिप रहना और फुर्सत पाते ही भाग जाना।"

रज्जन ने मेज पर से पिस्टल उठाली, कहा, "मैं कायर नहीं रामू कि तुमको छोड़ कर चला जाऊँ ?"

"रज्जन !"

"क्या है रामू ?"

"तर्क मैं नहीं करना चाहता हूँ। यह मेरा आदेश है। पिस्टल मेरे सिरहाने रख दे। फौरन यहाँ से चला जा। मैं कुछ और नहीं सुनूँगा।"

"क्या ?" उलझन में रज्जन बोला।

खट-खट-खट.........!

"लालटेन बुझा दे। जरा ठहर जा। पानी पिलाना।" पीकर, "बस चला जा।"

रञ्जन ने लालटेन बुझा दी।

"आज तुझे सारा देश सौंपता हूँ।"

"नहीं-नहीं रामू ?"

"यही न कि एक दिन जब मैं नायक बना था, तू कितना खुश हुआ था और माला लेकर......।"

"रामू !"

"रञ्जन तू वह भार सँभाल लेने लायक है। फिर केशव की रक्षा करना... ।"

"वह तो खूनी है। नायक की हत्या का......।"

"तू नहीं जानता। भाभी के भारी अनुरोध पर ही मैंने मजबूर होकर उसकी मौत के परवाने पर दस्तखत किये थे। पति के बाद उसका दूसरा वही तो सहारा है। उसका यही एक भाई केशव है। अविश्वास वह कर चुका है। और कौन जाने इस समय पुलीस को साथ लाया हो। किन्तु !"

खट-खट-खट.........

"अच्छा रामू !"

"रञ्जन यह आँसू। क्या मेरे आगे से मुर्झाया चेहरा लेकर ही तू जावेगा। बलिदान आदमी को सीखना है। फिर यह तो पुण्य है—महा-पुण्य !"

"लेकिन रामू तेरी माँ ?"

"क्यों उसकी झुर्रियाँ पड़ा चेहरा याद आ रहा है। भूल जा वह सब। दुनिया सरोकार रखने वाली जगह नहीं। तू भी तो आदमी की पूजा करने वालों में से है। हमारे पुरखे तो इसीलिए मिट्टी-पत्थर के खिलौनों की पूजा करते थे कि आदमी को भूल जावें।"

"अच्छा तो रामू।" रञ्जन गद्‌गद् हो बोला। नीचे से ऊपर चढ़ गया। उसके पावों की आहट भी खो गई।

अँधियारा था। सारी खोई हुई सामर्थ जमा कर रामू उठा। पिस्टल हाथ में ली। भारी पीड़ा को दबा, बाहर बढ़ा। टटोलकर दूसरे कमरे में पहुँचा। कुछ देर खड़े रह कर पिस्टल ठीक तौर पर सँभाल ली। फिर नीचे सीढ़ी से उतरा। दरवाजे के पास खड़े होकर पूछा, "कौन ?"

"रामू !"

"कौन भाभी ?" कह कर रामू ने दरवाजा खोल दिया। टॉर्च बालती वह बोली, "अँधियारा है।"

"बत्ती अभी-अभी बुझाई है।" कह कर रामू ने कुंडी बन्द कर दी।

"हूँ !" कह, वह उसे देखती ही रह गई। चुपचाप वह भाभी के सहारे ऊपर पहुँचा। चारपाई पर लेट गया। भाभी ने लालटेन बाल ली।

"पट्टी खोलना भाभी, भारी पीड़ा हो रही है।"

"हमेशा का लापरवा है। यही तेरा हाल रहा। कौन था भीतर ?"

"रज्जन।"

"कहाँ चला गया ?"

"पास वह पीपल का पेड़ है न ! वहीं बैठा सोच रहा होगा कि पुलीस भाई साहब को पकड़ कर ले जा रही होगी।"

"तब तैयार होकर नीचे गया था।" भाभी हँस पड़ी। पिस्टल को हाथ से टटोलते हुए बोली, "आखिरी बड़ा खेल, खेल लेने की सोचे हुए था। क्यों न ?"

"अब एक-एक मिनट खतरा मान कर चलना सीख गया हूँ। अच्छा रज्जन को बुला लूँ। क्यों वह बेकार पत्तियाँ गिने।"

रामू ने मुँह से एक तीक्ष्ण सीटी बजाई। भारी एक गूँज के साथ, भीतर फैलती वह आवाज बाहर पहुँची। कुछ देर बाद वैसी ही एक सीटी की आवाज आई। रामू बोला, "लो वह आ रहा है।"

और रज्जन ने आकर देखा कि भाभी की गोदी पर रामू बेहोश पड़ा था। घबड़ाई भाभी बोली, "घाव गहरा लगा है। पानी लाना।"

रामू के मुँह पर पानी के छींटे दिये और अखबार उठा कर हवा करने लगी। रामू ने आँखें खोलीं और फिर मूँद लीं। रज्जन ने पूछा, "इतनी रात अकेली आई हो?"

"डर किसका था। सावित्री ने सुनाया कि......।"

"सावित्री ने?" अवाक् रज्जन रह गया।

"केशव दौड़ा-दौड़ा सावित्री को अपनी विजय की बात सुनाने गया था। विश्वास सावित्री को नहीं हुआ। वह मेरे पास पूछने आई थी।"

"सावित्री कहाँ है?" रामू ने धीमे स्वर में पूछा।

"केशव की ढूँढ़ में।"

"क्यों भाभी?" रज्जन के कुछ भी बात समझ में नहीं आई।

"केशव पुलीस को खबर देने गया था और सावित्री......।"

"क्या भाभी!" रामू उठ खड़ा हुआ और बोला फिर, "तुम क्या कह रही हो? सावित्री को तुमने केशव की हत्या का भार सौंपा है?"

"नायक की हत्या की कोशिश।" दृढ़ भाभी बोली।

"रज्जन! रज्जन!! देख क्या कर रहा है। जल्दी जा। केशव को मारने का अधिकार किसी को नहीं है। मैं कहता हूँ, यह नहीं हो सकता है। जा तू? आँखें फाड़-फाड़ कर क्या देख रहा है।"

"रामू, इस एक भीख को ठुकराने वाला बल पाकर तू......।"

"भाभी ! भाभी !! तुम अपने अधिकार से उसे माफ कर दो। तुम्हारी बात कोई नहीं काट सकता है। वह भीख कब है ! तुमने यह क्या ठहरा ली ?"

"किन्तु रामू, देश के लिए जिसे सौंपा था, उसे वापस किस मुँह से माँग सकती हूँ। असहाय मैं नहीं। दल की सारी शक्ति पर मेरा भरोसा है।"

"लेकिन सावित्री !" रज्जन ने पूछ ही डाला।

"सावित्री अधिकार से बाहर वाला ज्ञान रखती है। सिर्फ केशव और अपने को लेकर चलना उसे नहीं था। केशव की मौत वाली बात का ज्ञान उसे था। नारी में हठ होता है। वही वह सँवारे हुए थी। और केशव की हत्या के बाद भी वह उसकी पूजा करती। केशव इतना कायर होगा, उसने नहीं सोचा था।"

"रामू !" रज्जन बोला।

"भाभी पीड़ा बहुत है। अँग-अँग में सब फैल गई। ओफ भाभी !" रामू के चेहरे पर भारी उदासी छा गई।

"रामू तेरी हिफाजत ठीक से न कर सकी। यह दिन देखना बदा था। रज्जन डॉक्टर बुला ला।"

"नहीं, अब सब बेकार है। वह डॉक्टर आकर ही क्या कर लेगा ! लेकिन रज्जन......।"

"समझ गई रामू। रज्जन ! रज्जन !! उठ, उठ ! देख, तेरे माथे पर यह टीका लगा रही हूँ। अब देश !" कहते-कहते भाभी ने रामू के कपड़े पर जमे खून को अपनी उङ्गली में ले लिया और रज्जन के माथे पर लगाया।

"भाभी !"

"चुप रह रामू।"

फिर रामू कहने लगा, "यह देश रज्जन और न जाने कितनी

कुर्बानियाँ माँगेगा। तैयार रहना—सावधान! अकारण घबड़ा नहीं उठना। अपने अधीन बात क्या है?"

"उठ! उठ!! रज्जन। नायक के बाद......।" भाभी बोली।

"रज्जन अब तू जा। दल के सब आदमियों को सूचना दे आ। देश का कोई काम किसी व्यक्ति के पीछे रुक नहीं सकता है। भाभी यहाँ है। तू जा।"

"अच्छा रामू दादा! अपने पाँव का धूल......।"

"फिर वही आदमी की पूजा! देश के अलावा किसी के आगे हमने कब झुकना सीखा है। जा तू अब। आज की सभा टल नहीं सकती है। व्यक्ति के ऊपर संस्था है, और संस्था के ऊपर देश! देश के लिए व्यक्ति का सवाल कभी मत उठाना।"

"देश के लिए रामू।"

"रज्जन देश हमारा है।"

"हमारा ही है दादा।"

बस रज्जन चला गया। रामू का चेहरा सफेद पड़ता जा रहा था। रामू अब बोला, "भाभी?"

"क्या है रामू?"

"जिन्दगी भी आज......।"

"इतना निर्दयी क्यों हो रहा है।"

"भाभी तू जानती है।"

"हाँ रामू। माँ की याद आ रही है न।"

"सारा बचपन उसी की परवा में कटा और भाभी?"

"क्या है रामू? कहता क्यों नहीं। हिचक किस बात का है।"

"सुशीला की याद आई है।"

"सुशीला की?"

"पाँच साल की वह थी। मेरी एक ही बहन। रात में वह मरी थी। तब मैं आठ साल का था। मौत का ज्ञान तब से ही

कुछ-कुछ हुआ। वह मौत सबल तब लगती थी। आज अब वह भावना है। मौत को एक साधारण भावुकता समझ कर उससे दिल बहलाया करता हूँ कि उस खिलौने को चूर-चूर कर सकूँ।"

"दरवाजा खुला है। बन्द कर आऊँ।" कह कर भाभी उठ खड़ी हुई, नीचे पहुँचकर दरवाजा बन्द करने को थी कि सावित्री हाँफती हुई आ पहुँची, बोली, "पुलीस आ रही है।"

"क्या?" भाभी ने साँकल चढ़ा दी। दोनों ऊपर पहुँचे।

"केशव उनके साथ है।"

"सावित्री?"

"कौन सावित्री!" रामू ने आवाज पहचान कर आँखें खोलीं।

"दल का एक आदमी एक परचा घर छोड़ गया था भाभी। रामू बाबू के नाम है।"

भाभी ने कागज को पढ़ा, फिर रामू को दे दिया। रामू पढ़कर बोला, "भाभी!"

"क्या है?"

"पानी पिलाना।" पानी पी कर, "अनर्थ!"

"नहीं तो।"

"फाँसी परसों होगी। अपील खारिज हो गई। सारे देश की बात की अवज्ञा!"

"चुप रह रामू।"

"भाभी अब तुम जाओ। पुलीस आ कर नहीं तो फजीहत करेगी।"

"यह तू क्या कह रहा है?"

"भाभी चली जाओ।"

"अकेले तू।"

—एक घन्टे के बाद उस कमरे से पुलीस वाले रामू और तीन सिपाहियों की लाश पोस्ट-मार्टम के लिए ले गए थे।

चिट्ठी आई थी

घूम कर लौट रहा था। मकान पर पहुँचा कि सुरेश की माँ ने कहा, "चिट्ठी पढ़ देना।"

मैं उसके मकान की ओर बढ़ गया। उसका छोटा-सा अपना मकान है, सिर्फ एक मंजिला। दीवारें पहाड़ी पत्थर की बनी हैं; ऊपर पेड़ से काटी गई मोटी मोटी बल्लियाँ पड़ी हैं। इनको 'द्वार' कहते हैं। ये मजबूत पहाड़ी लकड़ी की हैं, जिन पर दीमक और भूरी नहीं लगती। छत पहाड़ी चपटे पत्थर के चौड़े-चौड़े टुकड़ों से छाई हैं, दीवारें सफेद कमेड़े से पुती हुई हैं, जो कि हर साल दीवाली में सजावट के तौर पर पोतने का एक रिवाज है। मकान में एक ही कमरा है। एक ओर दीवार पर एक छोटी-सी खिड़की है, जो कि खिड़की नहीं, एक मोटा बेडौल सूराख ही है; दूसरी ओर एक दरवाजा है, जिसमें आते-जाते समय झुकना पड़ता है। छोटा-सा कमरा है। आधे में एक गाय, उसका बच्चा, घास और आधे में एक छोटी-सी चक्की है। रसोई का चौका और कुछ जरूरी सामान है। सामान कुछ तो बर्तन हैं, कुछ बड़े-बड़े टोकरे, जिनमें अन्न भरा है। ऊपर बल्लियों में दराँती वगैरह खोंसी हुई हैं, एक कोने में कुछ मैले 'गुदड़े' पड़े हैं; ये ही ओढ़कर रात काटने को हैं। और दूसरे कोने में दही-मथने का बड़ा लकड़ी का बर्तन है।

सुरेश की मा बूढ़ी विधवा है, अवस्था का अन्दाज नहीं लग सकता; दुःख, गरीबी व कठिन जीवन से मुँह पर झुरियों का घना जाल है, मानों ग्राफ-पेपर हो। आँखों में एक विचित्र अनुभूति है। सुरेश उसका एकमात्र पुत्र है। लोकमतानुसार माँ की अवस्था पचास साल के लगभग होगी और बेटे की पचीस साल की। आखिरी

बेटा है, दो और थे, वे फ्रांस की लड़ाई में मर गए। उनकी यादगार में 'पलटनी बूट' व 'बरांड-कोट' अभी तक घर में सँवारे धरे हैं। इतना ही नहीं, प्रति मास पेन्शन के दस रुपये भी उस बुढ़िया को अपने भूले बेटों की याद दिला देते हैं। स्वामी का चित्र भी सामने पड़कर रुला देता है। उन रुपयों को लेते वह रो उठती है और उस दिन भर उद्विग्न-सी रहती है। पेन्शन चार साल तक बराबर मिलती थी, पर अब सरकार ने बन्द कर दी है। पेन्शन बन्द क्यों हुई, यह बुढ़िया न जान सकी। हाँ, पटवारी ने एक दिन कहा था कि तेरे सपूत ने बन्द करवा दी है। वह कुछ समझ कर भी पूरा-पूरा नहीं समझ सकी।

सुरेश की माँ के कुछ अपने खेत भी हैं। पहाड़ में जमींदारी-प्रथा नहीं है। किसान ही अपने खेतों का स्वतन्त्र मालिक है। अपने नाम से लगान पटवारी के पास जमा करता है। बूढ़ी सुरेश की मां कई तरह से पैसे जमा करती है। घी बेचती है, फसल पर अन्न और घास बेचती है। खेत में एक नारङ्गी का पेड़ है और चार अखरोट के। अब इन सभी से कुछ-कुछ आमदनी हो जाती है।

मैंने देखा, चिट्ठी छोटी नहीं है। सरकारी लंबा लिफाफा है। एक ओर मुरादाबाद की मुहर लगी थी, जो साफ-साफ पढ़ी जा सकती थी। दूसरी यहीं ब्रांच पोस्ट-आफिस की थी और इतनी पीटी गई थी कि पढ़ी नहीं जाती थी। पाँच पैसे का एक सरविस टिकट भी लगा था।

सुरेश की माँ ने सुनाया कि सुबह पोस्ट-मैन आया था। तब वह रोटियाँ सेंक रही थी, उसका उस दिन खेत बोया जाने वाला था। मजदूरों के लिए कलेवा और बैलों के लिए मोटी-मोटी मँडुवे की रोटियाँ उसने सेंकी थीं। गेहूँ की चौड़ी-चौड़ी रोटियाँ थीं। उन पर

घी चुपड़ा हुआ था। उड़द और प्याज की पकौड़ियाँ थीं। आलू-मूली की रसेदार तरकारी भी थी और चार नारङ्गियाँ।

"ले पहले तू खा ले, तब चिट्ठी पढ़ देना," उसने कहा।

मैं रोटी खाने लगा। वह अपना सामान सँवारने लगी। एक छोटी टोकरी पर बीज के आध सेर जौ और दूसरी जरा बड़ी टोकरी पर दो सेर गेहूँ उसने निकाले। छोटी टोकरी को बड़ी पर रखकर एक साफ कागज में रोटियाँ और पकौड़ियाँ रख, फिर उन्हें रूमाल में बाँधकर रख दिया। एक बड़ा पत्थर की कटोरी पर तरकारी रक्खी। सब कुछ टोकरी पर रख कर नारङ्गियाँ एक कोने में धर दीं। उसे ढक एक बड़े लोटे को माँज, साफ पानी भर एक ओर रख दिया। फिर मेरे पास आकर बोली, "ले और खा।"

वह कह रही थी, "सुरेश न-जाने कब छूटेगा। एक साल चार महीने तो हो ही गए। अब की नारङ्गियाँ खूब लगी हैं। तू कहता था, नारङ्गी पकते ही छूट जायगा। अखरोट भी मैंने सुखाकर रख लिए हैं। अब की कुछ बेचूँगी नहीं। तुम दोनों खूब खाना।"

मैंने कहा, "चाची, वह तो आज-कल ही में छूटने वाला है।"

वह कहती रही, "बेटा, वह क्यों पकड़ा गया? उसने कोई जुल्म तो किया नहीं था। गांधी वाला था तो क्या हुआ।"

"सब पकड़े गए थे। वह भी पकड़ा गया। वह तो पुण्य था।"

"पुण्य बेटा, तू सच कहता है। तभी तो उसने बूढ़ी माँ का मोह छोड़ दिया। सरकारी दस रुपये भी ठुकरा दिए। लाख बरस जिए मेरा बेटा।"

सुरेश को डेढ़ साल की जेल हुई थी। उन दिनों कांग्रेस का जोर था, वह भी पकड़ा गया था।

सुरेश क्या था, एक आग की चिंगारी! विचित्र हो, लड़का

था। श्रद्धा का पात्र था, भक्ति का प्रसाद था और था सारे गाँव का प्यारा! वह एक विभूति था, बूढ़े से बच्चे तक सबका सुख-दुख बाँट लेता था। ब्याह, शादी व भले कामों में उसे बात करने की फ़ुरसत न मिलती थी। कोई बीमार पड़ता तो बस सुरेश रात-दिन उसके पास बैठा रहता था। किसी का लड़का मरता तो कहता, 'छी, वह तो सांसारिक नियम है, मैं तो हूँ आपका बेटा।' किसी का पिता मरता तो कहता, 'आ भाई, आज हम सगे भाई हुए। मेरा पिता भी मुझे बच्चा छोड़ गये थे।' किसी की मां मरती तो कहता, 'आओ, आज हम तुम मेरी बूढ़ी मां के ही बेटे हुए।' यही उसका हाल था। एक साल गाँव में कालरा हुआ तो वह इधर-उधर ही फिरता रहा। दिन भर काम में लगा रहता। वह मनुष्य-योनि में देवता था।

"हाँ बेटा, चिट्ठी पढ़ी?" उतावली में उसने पूछा।

वह तो मैंने पहले ही पढ़ ली थी। जेलर ने टाइप में अँगरेजी में लिखा था, 'प्लेग हुआ था, इलाज किया पर मर गया।' नीचे लापरवाही से घसीट में दस्तखत थे, मानो कोई साधारण बात हो गई हो। जिसका कुछ भी 'महत्व' नहीं।

मैं दिल ही दिल में रो उठा; पर उससे क्या कहता। कहा, "वह जल्दी छूट जायगा, चिट्ठी में यही लिखा है।"

वह टोकरियाँ सिर पर रखकर हाथ में लोटा लिये चुपचाप खुशी-खुशी खेतों की ओर जा रही थी। उसकी प्रसन्नता में कितना अपार अंधकार और अज्ञात दुःखान्त छिपा था, जिसे मेरी आँखें पढ़ रही थीं।

—संध्या को वह मेरे पास आई, रोती थी। होशहवास खो दिये थे।

रो रही थी खूब। गाँव में चर्चा फैल चुकी थी। अंत में उसके पास पहुँच गई। सत्य कहाँ छिपता है ?

"विश्वनाथ……!" कहकर वह मुझसे लिपट फूट-फूट कर रोने लगी। उसकी हिचकियाँ बँध गईं।

दुःख के उस प्रलय में मेरी आँखें भी बरस पड़ीं। सब आँसू की बूँदें सत्य की परिभाषा थीं। उनमें झूठ कुछ भी तो नहीं था।

वह रो रही थी, सत्य था, क्यों रो रही थी, सत्य था। सब सत्य ही सत्य था।

हाँ, हाँ, चिट्ठी आई थी !

शृङ्खला

उसी शहर में फिर आया हूँ। पिछले कई सालों तक इसकी स्मृति से खेला। अब कुछ भी समझ में नहीं आता। शहर का कोना-कोना कुछ नया सा लगता है। फिर भी पुरानी सब बातें उसमें हैं। आज मैं अपने को शहर से अलग पा रहा हूँ। लगता है—शहर और मेरे बीच एक खाई पड़ी है। नहीं, सब कुछ पुराना है। थोड़ा जो कुछ नया-सा है; वह पुराने की आड़ वाली मुसकान में छुप जाता है। फिर भी उससे बाहर बहुत सारी बातें हैं। शहर के एक होटल में डेरा डाला है। अपने से पहले निपट लूँ, फिर आगे और सोचूँगा। पहले काफी अरसे तक यहाँ रहा हूँ। जाते समय इस शहर को छोड़ते, बड़ा दुःख हुआ था। उस वक्त यह नहीं सोचा था कि फिर यहीं आऊँगा। उस दिन की स्मृति में तमाम बातें साफ-साफ अलग चमक उठती हैं। बहुत बड़ी दुनिया में घूम-फिर कर लौट आने के बाद भी आज वह यादगारें, चिट्ठियाँ, जीवन-कैनवास पर चमक उठती हैं।

सुरेश मेरा सगा दोस्त था। उसके साथ कालेज में मैंने कई साल काटे थे। एम०-ए० के दूसरे साल में, अपने पिताजी का तबादला हो जाने पर भारी हसरतों के साथ मुझे उसको, छोड़ देना पड़ा था। सुरेश चिट्ठियों का आदी नहीं था। नये जोश के साथ अपनी लापरवाही के बाद पहले-पहल उसने हफ्तेवार जरूर चिट्ठियाँ लिखी थीं। फिर महीने पर उतरते-उतरते चिट्ठी का सिलसिला बन्द हो गया। पिछले चार सालों में मैंने उसके बारे में कुछ भी नहीं सुना है।

श्यामा की याद की पीड़ा ने, बार-बार मेरे जीवन में विद्रोह पैदा किया है। उस लड़की के लिये अनजाने मैंने एक कुतूहल और लोभ न जाने क्यों बटोर लिया था। हमारे-बंगले के सामने ही, उसके पिता, वकील साहब का बंगला था और अम्मा अक्सर मुझे चिढ़ाती 'श्यामा से तेरी शादी कर देंगे।' वह श्यामा कोई बच्ची नहीं थी। तेरह साल की थी। उसको लेकर, कई बार मैंने जीवन तौला था।

बाजार में एक वेश्या रहती थी। नाम बतलाना जरूरी नहीं है। उसकी नजाकत और नखरों की सारे शहर में शोहरत थी। खूब गाती थी वह। अपनी सुन्दरता के अनुकूल रहने की आदत उसे पड़ गई थी। जो व्यक्ति एक बार उसे देख लेता, उस के दिल में सुन्दर एक गुड़िया की तरह उसे प्राप्त कर लेने की चाहना, उठती थी।

जब शहर छोड़ा था, इन तीनों की याद घाव बन बार-बार दुःखती थी। मुझे चिन्तित करने का साधन थी और एक अरसे तक बनी रही। यह बातें दिल के भीतर दबोच कर ही रेलगाड़ी पर बैठा था। वैसे मन आज पीठ पीछे पड़ी चीजों पर अधिक नहीं ठहरता है।

आज उसी शहर में फिर आना पड़ा। तब और अब में, भारी अन्तर मेरे जीवन में प्रवेश कर चुका है। अब मैं गृहस्थ हूँ। नौकरी करने शहर में आया हूँ। आज समाज में मेरा अपना दायरा और हक है। मेरी लड़का दो साल और 'बेबी' चार महीने का है। आज मैं पक्का सामाजिक जन्तु बन नागरिकों की गिनती में आ गया हूँ। तब भी मन में वे तीन प्यारी यादगारें बार-बार उभर आती हैं। उनके नजदीक अपने को पा रहा हूँ। अपने चारों ओर फैले वातावरण में कुछ नवीनता और नूतनता भले ही है, उसका निर्माण पिछले जीवन की भावनाओं से अलग नहीं लगता। सीमा कब और कौन बाँध पाता है?

क्यों न जल्दी उस सुरेश के घर पहुँच जाऊँ। सुरेश देखते ही चौंक कर पूछेगा, 'अरे तुम? कहाँ से आए...?'

मैं कहूँगा, 'यार, जिन्दगी भी एक चक्कर है। कल की कोई कुछ नहीं जानता है, देखो न एकाएक...?

'कहाँ टिके हो?'

'भाई तबादला यहीं का हो गया। बीबी-बच्चों के साथ होटल में डेरा डाला है।'

और भी बिछुड़े हुए लोग मिलेंगे!

—वह श्यामा? कितनी चंचल थी तब। अब तो कोई भी डर उसे नहीं होगा। उन दिनों वह स्कूल में पढ़ती थी और अब...?

कहीं श्यामा ससुराल न चली गयी हो। यह नियम लड़कियों पर आदि-काल से लागू होता चला आया है। अब भी क्या वह शरारती होगी? बाद को तो बहुत गम्भीर मजाक करना सीख गई थी। मेरे छोटे भाई से कहना आ गया था, 'तुम्हारे भैया बड़े झेंपू हैं। कहीं कोई भगा कर न ले जावे।'

उस साल होली में, उसने अपनी छोटी बहन के हाथ, लिफाफे में बन्द कर, एक 'मेंढक' इनाम में भेजा था। रोज कोई न कोई बात चलती थी।

अब श्यामा कहाँ होगी? इसी शहर में उसे पाया था। अब भी वह यहीं होगी। इसमें सन्देह क्यों उठता है?

उस दिन सिनेमा गये थे। तो वहाँ भी वह अपनी शरारतों से बाज कहाँ आयी थी? अपनी छोटी बहन के हाथ मूंगफली का 'ठोंगा' भेजा। खोल कर पाया कि छिलके ही छिलके उसमें थे। और अपने रचे खेल पर हँस पड़ी थी वह। आज श्यामा बीस साल की होगी। और मैं पिता हूँ।

—फिर वह वेश्या? उन दिनों शहर में उसका नाम था। बड़ी

चुलबुली और बातूनी थी। उसकी हँसी कितनी प्यारी लगती थी। उसके तेज जवाबों के आगे हार जाना पड़ता था। कैसी ठीक-ठीक बातें करती थी! सवालों का तुला उत्तर फौरन मिलता। कहीं वह उलझती नहीं थी। उसके आगे हमने अपने को समझने की अधिक परवा कभी नहीं की। उसके दिल को पढ़ने की चाहना रख कर भी, हम उसे पढ़ नहीं पाए थे। वह हमारे आगे अपने को खोल कर कभी नहीं रखती थी। हम भी उसी श्रेणी में थे, जो उसे नारी-खिलौना गिना करते हैं। फिर भी उसे पास पाया था। समीप अपने खींच कर, दिल से लगाया था। मेरे बहुत नजदीक वह आ गई थी। मैं उसके दिल और जीवन को कभी तो छू लेता था। आज क्या वह यहीं होगा?

एक महीना शहर में गुजर गया है। अपने आफिस और गृहस्थी के दायरे से बाहर निकलने के लिये, एक मिनट की बचत नहीं। अजीब-सी दिनचर्या चलती है। शायद गृहस्थी से छुटकारा पा, स्वतन्त्रता से बाहर घूमने वाला जमाना अब हाथ नहीं आवेगा। उसके लिये सावधानी बरतना अनुचित बात है। अनुसन्धान कब सच निकलता है। अपने जीवन पर वह हथियार लागू करना निरर्थक ही होगा।

—आज आफिस से लौट कर सुरेश के घर की ओर जाना पड़ा। फुरसत निकालने का अवसर मिल गया है। फाटक के अन्दर पहुँचा। बाग में न जाने क्यों रूखापन महसूस हुआ। पास ही तब देखा, कि नौकर तीन पहियों की साइकिल पर एक बच्चे को चढ़ा रहा है। बच्चा इधर-उधर उसे चलाने लगा। बच्चा सुरेश का ही था। सोचा फिर, सुरेश भी पिता है। बच्चे के पास पहुँच उसे गोदी में उठा लेना चाहा, पर वह मचल कर भाग गया। जरा आगे बढ़ कर पुकारना ही चाहता था—सुरेश, कि देखा उसका छोटा भाई दिनेश खड़ा है। उससे पूछा, "सुरेश कहाँ है?"

वह चुप। और आखिर उसने एक भारी जीवन फैसला सुनाया। सुनाया एक लम्बी बीमारी का हाल। आखिर सुरेश की मौत पर वह एकाएक ठहर गया।

देखा, सुरेश की माँ को और कोने में खड़ी उसकी बहन को भी। उधर एक किनारे हटी चुपके सुरेश की बाबी भी खड़ी मिली। चुप रह गया। कमरे में टंगा सुरेश का फोटो देखा। अपना पिछला कालेज वाला 'ग्रुप' देख कर चिल्लाना चाहता था—अरे सुरेश! पर उसकी माँ और बहन के आँसुओं के आगे हार गया। अपने को पकड़ नहीं सका। खिन्न लौट आया।

तीन महीने गुजर गये हैं। सुरेश के बाद और कहीं भी जाने का साहस नहीं होता है। दुनिया की बातों को सोच कर, डर जाता हूँ। कल कुछ फल खरीदने चौक गया था। वहाँ एक दूकान पर खड़ा हो कर फल खरीद रहा था, कि कोई बोला "अरे वह तो मनोहर बाबू से लगते हैं!"

देखा, श्यामा अपनी माँ से कह रही थी। वे भी खरीदारी करने आई थीं। पास ही उनकी कार खड़ी थी। आगे बढ़कर मैंने श्यामा की माँ के पैर छू लिये। श्यामा को देखा और उसके दबे मूक नमस्ते का जवाब देने को हाथ उठाया।

श्यामा की माँ बोली, "यहाँ कब आया है रे मोहन?"

मैंने सब कुछ सुनाया। श्यामा की माँ कहने लगी, "जीजी की बड़ी याद आती है।"

श्यामा की ओर आँखें फेरी, उसकी आँखें पूछती लगीं, अब क्यों आओगे जी?

—आज श्यामा के घर गया था। सुना, श्यामा बीमार रही। शादी रुक गई। अब जाड़ों में होगी। श्यामा में अब वह बनावटी

लज्जा नहीं थी। सुलझी गम्भीरता मैंने उसमें पाई। जब श्यामा अकेली मिली, तो छूटते ही पूछा, "अपनी बीबी को कब लाओगे?"

"जब आप कहेंगी।"

"आप, यह कहना भी सीख गए? बोलिये कब लाइयेगा। और शादी की मिठाई?"

मैंने कोई जवाब नहीं दिया।

वह कहने लगी. "हम लोगों को क्यों नहीं बुलाया था?"

जवाब दिया मैंने, "बड़ी जल्दी में हुई। खुद आखिरी मिनट तक मैं झगड़े और उलझन में था......।"

"अच्छा, आपकी बीबी हमारे यहाँ कब आवेगी?"

"तेरी शादी में......!"

"चुप रहो।" कह, वह एक बनावटी रूठन के साथ चली गई।

पुरानी जान-पहचान के कारण खातिर खूब हुई। चाय मिली, साथ ही फल और मिठाई भी।

लौट रहा था कि श्यामा की छोटी बहन ने एक लिफाफा दिया। घर आकर खोला, तो उसमें मेरा फोटो था। एक चिट्ठी :—

'......!'

फोटो लौटा रही हूँ। इसे अपनी बीबी को दे देना। उस फोटो को रखने का अधिकार आज अब मुझ से छिन चुका है। तुम झूठे निकले। अपना वादा भूल गये। हमने तो कभी शादी न करने का इकरार किया था। हाँ, अपनी बीबी से सब कुछ कहना। मेरा फोटो फाड़ देना।

अपने पुराने अपराधों के लिये माफी माँगती हूँ। अब तुम हमारे घर, मेरा जी कुढ़ाने न आना, तुमको मेरी कसम! न आना, न आना—अपने बच्चों की! मैं जीती, तुम हारे। यही मेरी खुशी है। अपने आगे मैं अब तुमको नहीं देखना चाहती हूँ। बच्चों को खूब प्यार करना।

अपनी बीबी को जरूर भेजना। मुझे उसे देखना है।'

सारा पत्र पढ़कर भी अभी-अभी मैं एक फर्म में श्यामा की शादी में उपहार देने के लिये एक नेकलेस का आर्डर दे आया हूँ।

पाँच सप्ताह और गुजर गए। श्यामा की बातें भी बिलकुल मन से बाहर हट गए हैं।

—आज संध्या को फिर मित्रों के अनुरोध पर, गाना सुनने के लिये, एक कोठे पर गये। वहीं सात साल पहले हमने एक 'नारी' देखी थी। उसके समीप भी मैं रहा था। कमरा वही पुराना था। वैसा ही लिपा-पुता और सामान-सजावट सब पुराना ही था। कहीं रद्दोबदल नहीं मिला। गाना सुनते-सुनते, उस पिछली नारी झुँझलाहट की रूप-रेखा मैं आँखें मूँदे मिटा देना चाहता था।

पांच रुपये गाने की फीस भेंट कर हमने उस वेश्या से पूछा, "आप प्यारी को तो जानती होंगी।"

"जी हाँ।"

"अब वह कहाँ रहती है?"

"एक सेठ के घर में बैठ गई है। बेचारी करती भी क्या? खुदकुशी या कहीं किसी घर में बैठ जाना ही हमारी आखिरी बात है। और क्या हम लोग करें?"

लौटकर आ गया। रात बड़ी देर तक उलझन में जीवन का बही-खाता खोल, उसमें नया-नया हिसाब लिखता रह गया। उन पिछले बीते सात सालों के बाद, कुछ भूली बातों के अलावा मैंने और क्या पाया है?

सड़क पर

वह गरीबों का मुहल्ला है। बिलकुल अस्वस्थ वातावरण— मैली-कुचैली बस्ती ! इस पर भी वहाँ एक बड़ी तादाद में लोगों को आश्रय मिला है। मजूदरी करके वे कई पीढ़ियों से वहाँ गुजर कर रहे हैं। उन लोगों का जीवन कोई मूल्यवान नहीं है। कच्ची मिट्टी की झोपड़ियाँ हैं। उनको टूटे-फूटे खपरेलों से ढक दिया गया है। एक-एक कमरा मुश्किल से समूचे परिवार वालों को प्राप्त है। सामने बाहर दरवाजे पर औरतें राख की ढेरियाँ लगा देती हैं। उसी से बच्चे खेला करते हैं। कभी कोई बच्चा वहीं टट्टी-पेशाब भी कर देता है। पुरुष हैं, उनको देख कर डर लगता है—वे नर-कंकाल भर में सीमित हैं। *श्रीहीन औरतें हैं। बच्चों की पैदाइश वहाँ अभिशाप है।* आधुनिक नागरिक-शास्त्र के मुताबिक वे सभी नागरिक हैं। उनका भी समाज पर पूरा दावा है। भले ही समाज ने उनको उठाने की कोशिश नहीं की है। वे झोपड़ियों में रहने वाले, दुनियाँ की दृष्टि में नीचे दरजे के हैं। ये लोग यहीं पैदा हुए हैं और एक दिन यहीं चुपके से मर जावेंगे। इनके प्रति सहृदयता दिखाने की परवा किसी को नहीं है। वस्तुवाद से कुचले जमाने में अब आदमी का उचित आदर कब होता है ! यही बात ठीक-ठीक इन लोगों पर लागू है।

तब मजदूर जीवन का सवाल साधारण बात नहीं है। दूर-दूर तक गाँवों में, लोगों के बीच यह धारणा फैल जाती है कि शहर में रोजगार मिलता है। वहाँ आमदनी के कितने ही जरिए हैं और हर एक आदमी मजे से रह सकता है। तब गाँव के भीतर रहने वाले लोग सरल-जीवन की अपेक्षा कर वहाँ चले आते हैं। शहर का कोई

ज्ञान उनको नहीं होता है। वे जानते हैं कि शहर में सब कुछ मोल मिलता है। मिट्टी और लकड़ी तक के लिये पैसे चाहिएँ। पीने का पानी सुभीते से नहीं मिलता। सब चीज बिक्री पर निर्भर रहता है। तब गाँव छोड़ने के लिये पछतावा भले ही हो, लाभ कुछ नहीं होता।

वे करें क्या? नौकरी तलाश करेंगे। मिलों में काम ढूँढेंगे। पैसे का भाव-तोल भला वे कहाँ जानते हैं? थोड़े पैसे के लोभ से ही काम करने के लिये राजी हो जावेंगे! दैनिक जीवन में अन्दाज लगेगा कि आटा खरा नहीं—लकड़ी के बुरादे की मिलावट है। घी में भी स्वाद नहीं—फीका-फीका लगता है। खालिस सरसों का तेल तक नहीं। सड़ी-गली तरकारियाँ मिलेंगी, जो जानवर तक नहीं खा सकते हैं। इसका सुधार अपनी सामर्थ्य के बाहर जान कर वे चुपचाप जीवन निभाने के लिए तुल जाते हैं।

अपनी तादाद का कोई भरोसा उनको नहीं रहता है। उनको समझाया जाता है, कि फूटे भाग्य और रूठे-भगवान का कोप स्वीकार करने के अलावा और कोई चारा नहीं है। भले ही यह एक धार्मिक डकैती हो, वे अपने को अपाहिज स्वीकार कर लेने में नहीं चूकते हैं। उनको अपने व्यक्तित्व पर कुछ भरोसा नहीं रहता है। वे पैसे वाले, जो पढ़े-लिखे समझदार व्यक्तियों का दिमाग तक खरीद लेने की क्षमता रखते हैं, उनके आगे उन अपढ़ों की कैसे चल सकती है। वैसे छोटी-छोटी चीटियाँ जहरीले बिच्छू को नष्ट कर डालती हैं। यह जान-कारी फैलते देर अधिक नहीं लगती। फिर भी यह बड़ी मिलें उस बाँबी की तरह है, जिनको कठिन परिश्रम से दीमक बनाती है; किन्तु एक दिन साँप उसमें घुस आता है। वहाँ पड़ा-पड़ा दीमकों को चाटना शुरू कर, अपना अस्तित्व कायम करते उसे कुछ देर नहीं लगती है। कहने का मतलब सिर्फ यही है कि यहाँ की बस्ती अपना उपकार करना नहीं जानती।

उस मैले-कुचैले मोहल्ले में एक सप्ताह से जीवन आया हुआ है। फाल्गुन का महीना है। औरतें आधी-आधी रात तक ढोलक बजा-बजा कर होली गाती रहती हैं। मुरझाये लड़के-लड़कियों के चेहरों पर उत्साह दीख पड़ता है। तब ही लगता है कि उदासीनता उनके बीच से भाग गई है। वे सब निश्चिन्त और खुश हैं। उसी तरह जैसे कि भद्दी चीज में कभी-कभी सजावट मालूम पड़ती है। सजीवता छाई हुई है। सब अपनी अकुलाहट, बेचैनी और निराशा हटाने की कोशिश में रमे हैं। बड़ी-बड़ी रात जागने के बाद मजदूर सुबह उठकर काम पर जाते हैं। औरतें दिन-भर घर के काम-काज में मशगूल रहती हैं। उसके बाद एक भारी झगड़ा शुरू होता है। कुछ लोग त्योहार मनाने के लिए ताड़ी, शराब या सुल्फे को उपयोगी मानकर इस्तेमाल करने में नहीं चूकते। इसी के साथ एक तीखा व्यंग उस समाज पर चिपक; बेचैनी फैला देता है।

फिर, उधर सोखू बीमार है। चार व्यक्तियों का परिवार! पिता-पुत्र और सास-बहू। तीसरा महीना चल रहा है। बूढ़ा मशीन साफ करता-करता ऊपर छत पर से नीचे फर्श पर गिर पड़ा था। टाँग टूट गई। मौत का आसरा लगाये हुए है। जीते रहने की कोई उम्मेद नहीं। अपनी हिफाजत के अलावा, बार-बार घर की दशा देख, बुड्ढा चुपचाप पड़ा हुआ कराहता है। बुढ़िया कोसती है। गालियाँ देती है। बूढ़े के मर जाने की मनौती मनाती है। वह जीकर व्यर्थ घर पर अहसान लाद रहा है उसकी क्या जरूरत है? उसकी वजह से कर्जा हो गया है। अब वह सब का सब कैसे दिया जायगा? बुढ़िया पहले बहुत चिन्तित रहा करती थी। मौत का भय उसे लगता था। अब सब-कुछ भूल गई है। बूढ़ा जिन्दा रहे, चाहे मर जावे; अब किसी को उसकी अधिक चिन्ता नहीं है।

रात बीत रही है। बूढ़ा बीच-बीच में खर्राटे लेता-लेता चुप हो जाता है। बुढ़िया समझती है कि मर गया। कुछ ठीक सा

अन्दाज लगाने पास पहुँचती है। पर साँस की हल्की घरघराहट सुन, गति पा कर झुँझला, लौट आती है। हकीम जी आज मरने को कह गए हैं, तब भी बूढ़ा मरा नहीं है। न जाने कब तक मरेगा! जैसे कि मौत को ठगने की ठहराए हुए हो।

एक कोने में बहू दर्द से बीच-बीच में चीख उठती है। उसका दसवाँ महीना चल रहा है। आस-पास के घरों की औरतें समझा चुकी हैं कि एक-दो रोज में जरूर बच्चा हो जायगा। वह बुढ़िया उसके पास जाकर एक सफल सेविका की तरह बैठ जाती है। वह बहू छटपटाती है। पीड़ा से कभी-कभी चीखने भी लगती है।

अभी-अभी बुढ़िया का लड़का भारी ऊधम मचा कर गया है। उसे कुछ फिक्र नहीं है। जो कुछ वह कमाता है, अपने आवारा-दोस्तों के साथ शराब में फूँक देता है। किसी काली-कलूटी छोकरी से उसकी दोस्ती हो गई है। उसे ही खिला-पिला कर, उसकी टहल करता है। घर की चिन्ता उसे नहीं। दो घण्टे पहले वह आया था। आकर अपने टीन के बक्स को टटोला। बहू की चीजें इधर-उधर फेंक कर कुछ ढूँढ़ता रह गया। जब कुछ नहीं मिला, तो अपनी बीबी के पास खड़े होकर गाली-गलोज करने लगा, "पैसे सब कहाँ चले गये?"

उसके मुँह से शराब की बदबू आ रही थी। कुछ जवाब न पा, अशक्त बहू को एक लात मार कर वह बोला था, "सुसरी सोने का बहाना बनाए पड़ी है। कहाँ चले गए हैं सब के सब पैसे!"

बहू पीड़ा से तड़पने लगी, फिर जोर-जोर से रोने लगी। कुछ क्या बोलती? लेकिन वह शेर बन बैठा। उसकी झोंटी पकड़ली। उठा कर एक बारगी शैतान की तरह जमीन पर उसे पटक कर कहा, "सुसरी डाह करते-करते मर जावेगी। हम तो मर्द की जात ठहरे। एक नहीं कई-कई रखेल रखेंगे। तू चाहे कुएँ में कूद पड़ना।"

और सास उठ कर आई थी। समझाते हुए कहा था, "उसकी हालत ठीक नहीं है। चार दिन से चूल्हा नहीं जला है।"

तो भी वह माना नहीं। सारे घर का सत्यानाश करने की धमकी देकर कहता हुआ चला गया था कि वह लौट कर सबका खून कर देगा। फाँसी का डर उसे नहीं। कोई उसको रोक नहीं सकता।

मोहल्ले वाले रोज के परिवारिक झगड़ों को उपेक्षित समझ कर कभी हस्तक्षेप नहीं करते। यह सब व्यर्थ की बातें हैं।

वही बहू गहरी-गहरी साँस ले, एक बारगी फिर चिल्लाने लगती है। सास जानती है कि पीड़ा तेज हो गई है। तब अनायास ही एक सुखद-स्वप्न का आकांक्षा उसके दिल में चमक उठती है। उसका अपना भी अनुभव है। वह एक दिन माँ बनी थी! तो वही सारा भार उठा लेगी। नाल काटेगी। बच्चे को नहलायेगी। बुढ़िया के सारे बाल सफेद पड़ गये हैं। चेहरा बारीक गहरी रेखाओं के जाले से भर गया है। आँखें ठीक तरह नहीं देख पाती। फिर उस कमरे में अँधियारा है। कुछ सूझता नही। टटोल-टटोल कर वह सब कुछ समझ रही है। कभी-कभी ढोलक व गाने का स्वर, एकाएक कमरे के अन्धकार को चीर कर, वहाँ फैल जाता है। बुढ़िया सिहर उठती है। बेहोश पड़ी बहू अब चुप है। वह उसके पेट को देखने लगती है। विश्वास है कि लड़का ही होगा। उस नाती का चाहना न जाने उसे कब से है। अब जाकर साध पूरा हुई। वह किस तरह उस बच्चे को खिलावेगी। बहुत सारी बातें गढ़-गढ़ कर वह पुलक उठती है।

वह बूढ़ा अब अजीब से लम्बे-लम्बे खर्राटे भर रहा है। वह स्वर भारी डर पैदा करता है—खरड़ड़... खरड़ड़... ख र र र... ख्याँ-ख्याँ... खरड़ड़!!!

तो क्या वह मर ही जावेगा। बुढ़िया उठ कर, उसके पास चली जाती है। उसे पति के प्रति मोह उभर आता है। उसे हिलाती है।

वह जीवित है। साँस ठीक-ठाक चल रहा है। ख्याल आता, कहीं वह मर तो नहीं रहा है।

एक लम्बे अरसे का बीता पिछला जीवन आगे फैल जाता है; उसमें कुछ भी अधिक नहीं है। थोड़ी सी बातें—बहुत मैली, कहीं जरा चमक नहीं। वही तङ्ग हालत! पति के साथ कितने गौरव से वह रही थी। पहले दोनों के बीच जब झगड़ा होता था, वह बार-बार मायके जाने की धमकी देती थी। पति कितनी मिन्नतें व खुशामद नहीं करता था। जितना जो कुछ प्राप्त था उसी से वे सन्तुष्ट थे। गृहस्थी सुचारु रूप से चलती ही रही। लड़के की पैदायश! वह गुजरे दिन झाँक-झाँक कर उसे परेशान करने लगे।

वह बूढ़े का सिर अपनी गोद पर रख कर, उसे सहलाने लगी। उस अंधकार को छेद कर, वह उस चेहरे को पूरा-पूरा एक बार पढ़ लेना चाहती थी। पढ़ती रही—पढ़ती ही रही.........!

साखू को एक दिन शाम को कुछ मजदूर उस झोपड़ी में डाल गए थे। बुढ़िया उसकी सेवा करते-करते अपने को भूल जाती थी। वह अच्छा नहीं हुआ। बुढ़िया ऊब गई। तब उसने अपना सारा ध्यान अपने लड़के और उसकी बहू पर जमा दिया। उसके बाद नाती के लिए वह चिन्तित रहने लगी। बहू का एक बच्चा पहले मर चुका था। अब के वह सहूलियत से पूरी-पूरी हिफाजत करना चाहती थी।

उसका मन भर आया। वह बूढ़ा सच ही क्यों मर रहा है। उसने अपनी उँगली उसकी नाक पर रख दी। गरम-गरम साँस महसूस कर उसने अन्दाज लगाया कि वह अभी मर नहीं सकता है। हकीम झूठा है। वह नहीं चाहती कि बूढ़ा अभी मर जाय। कुछ दिन उसे और जिन्दा रहना चाहिए! उसकी उम्र ही क्या है। मुश्किल से पचासवाँ पार किया है। लोग तो सत्तर-सत्तर साल तक जिन्दा रहा करते हैं। फिर सोचती कि उसका जिन्दा रहना फजूल ही है।

अपने हाथ-पाँव तक का अब वह नहीं है। इस तरह दूसरों का आसरा ताकना अनुचित होगा। तो तब मौत उचित है। वह व्यर्थ अपना स्वार्थ बढ़ाने क्यों तुल गई?

वह बुढ़िया फिर भी रोने लगती है। रोती है——रोती है। रोने का सबब खुद नहीं जानती। बूढ़े के खर्राटे बन्द हो गये हैं। बहू निश्चिन्त सोयी पड़ी है। वह संभल गई। बूढ़े का सिर गोदी से उतार, चुपचाप अलग बैठ जाती है। तभी बाहर किसी के पावों की आवाज सुनाई पड़ती है। उसने सोचा कि बेटा लौट आया। निश्चय किया कि मना-बुझा कर वह कहेगी—बेटा यह तो लगा ही रहता है। तुझे अब समझ से काम लेना चाहिए।

कुछ देर इन्तजार कर वह उठी। दरवाजे के पास पहुँच टट्टर हटा कर बाहर देखा। कुछ नहीं है—कोई नहीं। होली है। वे ही गीत, कहीं औरतें गा रही हैं। वे गीत गली को चीर उसके कलेजे में पैठते हैं। वह सहम जाती है। ऐसा लगता है कि मौत उस कमरे के भीतर पैठने वाली है। डर कर वह टट्टर लगा, भीतर अपने ही सहारे खड़ी न रह, धप से फर्श पर बैठ गई। कुछ सोच नहीं सकती

—यह गरीब होना एक नैतिक अपराध है। गरीब को दुनिया में जीवित रहने का कोई हक नहीं है। कौन सी गुञ्जाइश है! वह धनी समाज हर तरह पैसे से खरीददारी करता है। अमीर पाप और चरित्र को नहीं मानते हैं। वे पैसा जमा करने के आदी हैं। पैसा उनको चाहिए। पैसे के आगे नैतिक-अनैतिक का कोई झगड़ा नहीं उठता है। कानून, धर्म और नैतिकता गरीबों के लिए है। अमीरों के जीवन छानबीन करना एक सामाजिक अपराध है। वे स्वादिष्ट भोजन करके कीमती शराबें पीते हैं। अमीरों को भूख और शक्ति बढ़ाने वाली दवाओं का इस्तेमाल जरूरी है। उनके जीवन में

कोई दखल नहीं डाल सकता। उन पर राय देने का अधिकार हरएक को नहीं है।

इसी तरह एक और भी शहर का मोहल्ला है। वहाँ कोठियाँ हैं। लोग मोटरें रखते हैं। बँगले के चारों तरफ फुलवाड़ियाँ हैं। वहीं साँझ को नौकरानियाँ स्वस्थ बच्चों को छोटी-छोटी गाड़ियों में घुमाया-फिराया करती हैं। वहाँ का वातावरण दिल को हरा कर देता है। इस तरह की विभिन्नता के बीच जीवन तीव्र गति से चलता है। बंगलों में बिजली है, रेडियो भी सुनाई देगा। सीमेन्ट की चौड़ी सड़कों पर मोटर ताँगों की आवाज गूँजती रहती है। वहाँ के लोगों का भगवान खुश है। वे भाग्यशाली हैं। पर क्या यह जीवन को परखने की सही कसौटी है?

अमीरों के उस मोहल्ले में एक बड़ी पार्टी है। सैकड़ों मोटर, फिटन और ताँगे सड़क पर कतार बाँधे खड़े हैं। भारी चहल-पहल है। लगता है कि सारा जीवन-उत्साह वहाँ अहसान सा खड़ा है। हरी दूब से भरे लॉन पर, खूब सजावट के साथ कुर्सियाँ और मेज बिछाई गई हैं। उन पर बैठे नागरिकों को होटल के नौकर खिला रहे हैं। खासी तकल्लुफी बरती जा रही है। हरएक के चेहरे पर प्रसन्नता की गहरी छाप है। पर क्या सारे संसार का सुख वहीं उस मोहल्ले में चुपचाप सोया पड़ा रहेगा? उसे किसी की अवहेलना की परवा नहीं। पिता, माँ, बच्चे—हरएक की अपनी-अपनी स्वस्थता है?

और बुढ़िया तो उसी तरह बैठी हुई है, लड़का अभी तक लौट कर नहीं आया। वह मन ही मन उस राँड को गाली देती है, जिसने आजकल उसके बच्चे के मन को फेर लिया है। वरना वह बुरा लड़का नहीं था। उसकी बहू तो लाखों में एक है—गौ की तरह सीधी। उस राँड के नाश के लिए शीतला-माता की मनौती करती-करती, बताशा चढ़ाने की व्यवस्था सोच लेती है!

गरड़—गरड़—गरड़ ड़ ड़... !

उस बूढ़े के गले से भारी आवाज आने लगी। बुढ़िया सावधान हो गई। अन्धकार में वह आवाज, उसके दिल से बार-बार टकराती है। फिर भी वह वैसे ही बैठी रही। एकाएक वह स्वर बन्द हो गया। बुढ़िया चौंक उठी। अब वह खड़ी हुई। समझ गई कि बूढ़ा ... गया है। वह खड़ी की खड़ी ही रह गई। उसका दिल पसीज गया। आँखों से आँसू बहने लगे। एकाएक बहू का डर हो आया। मौत के बाद, मुर्दे के चारों ओर पिशाच इकट्ठे हो जाते हैं। वह बच्चे के हक में ठीक नहीं। तब वह लाश मोहल्ले वालों को सौंप देगी। लाश का वही उपयोग है। चैतन्य हो, टट्टर हटा वह बाहर निकली। एक बार खड़े होकर उसने भीतर देखा। वहाँ अन्धकार के सिवाय कुछ भी नहीं था। वह दौड़ी दौड़ी, भागने लगी...............!

—सुबह लोगों ने देखा कि सोखू मरा पड़ा था। साथ ही बच्चे का रोना उस नीरव शान्ति में जीवन उड़ेल रहा था।

जिस चौड़ी सड़क पर गरीब को ठीक तरह चलने का अधिकार नहीं, वहाँ से चार आदमी सोखू की लाश को चुपचाप ले गये। वे दुनिया की दृष्टि से अपनी निम्नता फिर भी नहीं छिपा पाते थे।